ॐ नमो भगवते वासुदेवाय !

सत्य का मार्ग

—भाषण—

स्वामी रामतीर्थजी महाराज

सत्संग भवन
अम्बाला नगर–7

स्वामी रामतीर्थ उपदेश माला

(१)

त्याग आपके स्थान, पद और शारीरिक काम-काज से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, त्याग का इन बातों से

त्या
आपको

त्या
आपकी
पराक्रम
बना देता
लेता है।

त्याग
देना।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय !

❀ सत्य का मार्ग ❀

—भाषण—

स्वामी रामतीर्थजी महाराज

5.1.83

❀ सत्संग भवन ❀

अम्बाला नगर–7

प्रकाशक तथा मुद्रक :—

प्रधान—श्रीगीता सत्संग सभा (Regd.)

सत्संग भवन, अम्बाला नगर।

१०००० प्रतियाँ

[भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्य के कागज पर मुद्रित]

दिसम्बर, १९८१

मूल्य—एक रुपया

56020

मुद्रणालय—
'हितैषी प्रैस'
सत्संग भवन,
गीता नगरी;
अम्बाला नगर—7

सत्य का मार्ग

२० वीं शताब्दीके ज्ञान-सम्राट्—



स्वामी रामतीर्थजी महाराज

* राम-परिचय *

लेखक—श्री रायबहादुर लाला बैजनाथजी

"......तीसरे महापुरुष, जिनसे मेरा घनिष्ट परिचय था और जिनके साथ मैंने काम किया था, पंजाबके स्वामी रामतीर्थ एम० ए० थे। आप उन उत्तम और उत्कृष्ट महापुरुषोंमें से थे, जो आत्मा की उच्चतम आकाँक्षाओं की प्राप्ति का आदर्श उपस्थित करने के लिये कभी-कभी मानव-जाति के मध्य में आया करती हैं। स्वामीजी ने पंजाब के गुजराँवाला जिले के एक धर्म-परायण ब्राह्मण-वंश में जन्म लेकर, और कोई पूँजी न रखते हुए भी, २०-२१ वर्ष की अवस्था में, पंजाब युनिवर्सिटी से, गणित का एम० ए० पास करके नाम पैदा किया। इसके बाद वह लाहौर के फ़ोरमैन क्रिश्चियन कालेज के प्रोफ़ैसर बनाये गये। परन्तु उपनिषदों के महान् सिद्धान्त 'तत्त्वमसि' (वह तू है) की सत्यता का केवल अनुभव करने के लिये वह शीघ्र ही अपने इस पद तथा कुटुम्बियों और मित्रों से सब सम्बन्ध त्यागकर हिमालय की ओर चल दिये। बगलमें उपनिषद की एक पोथी दबी हुई है, साथी हैं जंगल के पशु-पक्षी और पहाड़ी गंगा का

स्वच्छ जल । गरमी, सर्दी और वन की सब मुसीबतों को झेलता हुआ, जीवन की समस्याओं पर गम्भीर विचार में रत, यह नवयुवक बरसों तक लगातार भटकता रहा । कभी वह कैलाश-शिखर पर चढ़ता है, तो कभी कश्मीर में अमर-नाथ की यात्रा कर रहा है । आज यमुना के मूल-स्थान यमुनोत्तरी के दर्शन करने गया है, तो कल गंगा के मूल-स्रोत गंगोत्तरी जायेगा, आज नदीके तट पर विचार में बराबर दिन-पर-दिन बिता रहा है । इतने पर भी जब वह अनुसन्धान की वस्तु को न प्राप्त कर सका, तो संसार का अस्तित्व भूलकर उसने अपने शरीर को गंगा में डाल दिया और गंगा ने उसे उठाकर चट्टान पर बिठा दिया । अन्त को २६ वर्ष की अवस्था में उसे उस वस्तु की ध्यान द्वारा प्राप्ति हुई, जिसे वह ढूँढ रहा था ।

अब वह अपने आपको भारत की सेवा में लगाने के लिये पहाड़ों से नीचे उतरकर जन-समाज में आता है, और सब सम्प्रदायों तथा राष्ट्रों के हज़ारों मनुष्यों को उपदेश देता है । केवल अपनी उत्सुकता और मनोहर व्यक्तित्व के बल से ही वह लोगों को अपना अनुयायी बना लेता है । वह शारीरिक आराम-चैन से बेपरवाह है, जो कुछ सादे-से-सादा भोजन उसे मिल

जाता है, कर लेता है, और जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुओं के सिवा कोई भी चीज़ वह अपने साथ नहीं रखता। रुपया-पैसा या वस्त्र अथवा दूसरी (चीज़ें) ज्यों ही उसे भेंट की जाती हैं, वह दूसरों को दे देता है। इस संन्यासी द्वारा प्रेमी भक्तों के दिये हुए स्वादिष्ट भोजन इस कारण त्यागे दिये जाते हैं कि जो लोग सत्य का जीवन व्यतीत करने की आकाँक्षा रखते हैं, उनके भाग्यमें उच्च विचार और सादी-रहन-सहन ही है। न अपनी श्रेष्ठता का व्याख्यान, न आचरणों का अभिमान और न अपनी बड़ाई का भान। जिस किसी का इस स्वामी से संसर्ग हो जाता है, वह उस की मुस्कराहटों से मोहित हो जाता है, और उसे जान पड़ने लगता है, मानो उसके सब संकट और खेद उस समय दूर हो गये। उन्हें अध्ययन का अनुराग इतना अधिक था कि थोड़े ही समय में पाश्चात्य धार्मिक और तात्त्विक पुस्तकों का पूरा पुस्तकालय ही पढ़ डाला। उपनिषदोंके ऋषियों के तथा व्यास, कृष्ण, शङ्कर, बुद्धके वाक्य उतने ही उन की जिह्वा के अग्र-भाग पर थे, जितने कि शम्श तबरेज़ और मौलाना रूम के। कांट; शोपेनहार, फिचटे और हिगेल उनके उतने ही परिचित थे,

जितने कबीर और नानक। परन्तु उर्दू-काव्य स्वामीजी का विशेष विषय था और लक्षणों से प्रतीत होता है कि उनके पद्य भारतीयों में वेदान्त के अन्य अनेक प्रमाणभूत श्लोकों की तरह प्रचलित हो जायेंगे।

ई० १९०२ में, हम उन्हें जापान होते हुए अमेरिका जाते पाते हैं। वहाँ उन्होंने दो वर्ष के काल में अनेक विद्वान् और अग्रणी जनों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। अमेरिका की 'ग्रेट पैसिफ़िक रेलरोड कम्पनीके' प्रबन्धकर्त्ताने उन्हें 'पुल मैन कार' में स्थान देते हुए कहा था—"उन की मुस्कियाँ दुर्निवार हैं।" अमेरिकामें अपने भक्तों की पूजा अर्चा से ही उन्हें संतोष नहीं हुआ, वहाँ वह भारत का हित साधन करने के लिये प्रयत्न करते रहे। कार्य करना, निरन्तर कार्य करना, उनका मूल मन्त्र था। वह कहते थे—"हमारे सामने ठीक तरह का यज्ञ (बलिदान) अर्थात् दीनों की सेवा और रक्षा करने और इस यज्ञ को इस प्रकार करने का प्रश्न है कि कार्य अपने उद्देश्य को ही नष्ट न कर सके। प्रत्येक भारतवासी को अपने से छोटों को, चाहे वे पद, धन, विद्या या शक्ति किसी में छोटे हों, अपने बच्चों की तरह मानना और उनकी सहायता करनी चाहिए

और बिना किसी पुरस्कार की इच्छा के माता के उस परम आनन्द को, जो उत्साह और प्रेम-रूपी आत्मिक भोजन के देने से मिलता है, प्राप्त करना चाहिये। यही वास्तविक निष्काम यज्ञ है।" जैसा कि उन्होंने अपने निराले ढंग से कहा था—

"आवश्यकता है सुधारकों की

उन की नहीं, जो औरों को सुधारते हैं;

किन्तु उन की जो अपने आपको सुधारना चाहते हैं।

उनकी नहीं, जिन्होंने विश्वविद्यालय की डिग्रियाँ प्राप्त की हैं;

किन्तु उन की, जिन्होंने अपने आप पर विजय पाई है।

अवस्था–ब्रह्मानन्द की जवानी।

वेतन—ईश्वरत्व।

शीघ्र प्रार्थनापत्र भेजो—

जिसमें भिखमंगों की सी दीन याचना न हो।

किन्तु जिसमें आवेश–पूर्ण निश्चय हो—

विश्व के संचालक, अर्थात् अपने आपको।"

पश्चिम में दो वर्ष रहकर स्वामीजी भारत लौटे; परन्तु इतने ही समय में वहाँ की अमली ज़िन्दगी का

जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया, वह किसी दूसरे मनुष्य को बीसियों वर्षोंमें भी नहीं हो सकता था। इस ज्ञान को उन्होंने उदारतापूर्वक अपने लेखों और व्याख्यानों द्वारा अपने देशवासियों के चरणों में रक्खा। उनके समस्त लेख और व्याख्यान पूर्व के अगाध पाण्डित्य और पश्चिम के व्यावहारिक जीवन की छापसे अङ्कित होते थे। भारत के लिये हल करने योग्य जो प्रश्न हैं उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

"व्यावहारिक बुद्धि की दरिद्रता के साथ-साथ यहाँ पर आबादी की अधिकता है। शारीरिक श्रम से घृणा, जाति-पाति के अस्वाभाविक विभाग, विदेश यात्रा का विरोध, बाल-विवाह और स्त्रियों को व्यापक शारीरिक और बौद्धिक अन्धकार में रहने को विवश करना आदि सब इस व्यावहारिक बुद्धि के अभाव के ही अन्तर्गत हैं। पूर्व-पूरुषोंसे दाय (वरसा) मिले बिना हमारा काम नहीं चल सकता। जो समाज इस वरसे का त्याग करता है, वह अवश्य बाहर से नष्ट हो जायेगा। साथ ही यह अंश बहुत अधिक होने से भी काम नहीं चलता। जिस समाज में इसका प्राबल्य है, वह भीतर से नष्ट हो जायेगा। उन बड़े आदमियों से, जिनके विचार छोटे हैं, देश बलवान्

नहीं होता; परन्तु उन छोटे आदमियों से जिनके विचार बड़े हैं, देश बलिष्ठ होता है। एक औसत भारतीय घर समग्र राष्ट्र की अवस्था का आदर्श है। दरिद्रता का हेतु केवल आमदनी की कमी और खाने वालों की हर वर्ष वृद्धि ही नहीं है; परन्तु निरर्थक और निष्ठुर रीतियों में अनुचित खर्च करने की गुलामी भी है। यदि आबादी की समस्या बिना हल किये छोड़ दी गई, तो राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय मैत्री की सब चर्चा निष्फल होगी। विदेश यात्रा से जाति या धर्म के नष्ट होने का विचार दूर करना भी इस की एक औषध है। यह धारणा त्यागी जानी चाहिये कि बच्चों के हो होने पर ही स्वर्ग में तुम्हारा प्रवेश निर्भर करता है। विवाह को पूर्ववत् मधुर सम्बन्ध बनाना चाहिये। देश में अयोग्य, असमर्थ, असार, पराम्न-भोजियों की वृद्धि करने के लिये विवाह मत करो। खाँडे की धार पर तुम्हें शुद्धता प्राप्त करनी चाहिए। बिना शुद्धता के न वीरता है, न एकता और न शान्ति। शिक्षा के क्षेत्र में, प्रधान कर्त्तव्य हमारे सामने गरीबों और स्त्रियों को शिक्षा देना और अधिक उन्नत देशों में जा कर कृषि-विद्या और कला-कौशल सीखना तथा उस उपयोगी विद्या

को भारत में खूब फैलाना है। यदि विश्वास को लौ और प्रज्वलित ज्ञान की मशाल तुम्हारे हृदय में सजीव नहीं है, तो तुम एक कदम भी नहीं बढ़ सकते। ज़बानी जमा-ख़र्च की अपेक्षा प्रकृति की गहराई में रहना, अपने अस्तित्व की गहराइयों को नापना, तुम में जो आन्तरिक वास्तविकता है, जो प्रकृति में भी आन्तरिक वास्तविकता है, उसे अनुभव करना और प्राप्त करना, 'तत्त्वमसि' की जीती-जागती मूर्ति होना यही जीवन है, यही अमरता है।"

किसी धर्मोपदेशक और किसी समाज-सुधारक ने इस प्रश्न को महान् स्वामीजी से बढ़कर न तो अधिक स्पष्टता से वर्णन किया और न इस गुत्थीको सुलझाया है। खेद इसी बात का है कि भारतमें उनके कथनों की सत्यता का अनुभव करने वाले बहुत थोड़े लोग हैं!

अस्तु! थोड़े दिनों तक मैदानों में काम करने के बाद वह अपने साधारण अध्ययन और ध्यान करने के लिये हिमालयमें एकान्त वास को चले गये और ३३ वर्ष की अवस्था में, टिहरी के निकट स्नान करते समय गंगा में डूबकर उन्होंने यह शरीर त्याग दिया।

उनके उपदेशका सार पूर्व की दार्शनिक बुद्धिमत्ता

का जापान और अमेरिका की व्यावहारिक बुद्धिमत्ता से मिलाना था। "न आत्म-अपकर्ष न जान-बूझकर सिसक-सिसककर आत्म-हत्या, न संसार से बिलकुल बिलगता, न संयम-शून्य और विवेक-रहित वंश-वृद्धि, न अज्ञानता और दासता में तृप्ति, न भूतकाल का विचारहीन और निर्बलकारी संकीर्तन और न वर्तमान तथा भविष्य का विस्मरण, परन्तु पुराने भारी वस्त्रों का त्याग और अन्धविश्वास का दूरी-करण"—यही उस महान् ऋषि का सन्देश है। उनके प्रभाव का उन्हीं के साथ अन्त नहीं हो गया; वरन् हर साल वह धीरे-धीरे और तत्परता से केवल हमारे नवयुवकों में ही नहीं, प्रत्युत साधु-समाजमें भी, जो पहले उनकी उपेक्षा करता और उन्हें घृणादृष्टि से देखता था, प्रवेश करता जाता है।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

❋ सत्य का मार्ग ❋

जैसा कि समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है, आज के व्याख्यान का विषय है—"सत्य का मार्ग" पाश्चात्य लोगों के लिये इस शीर्षक के कुछ अर्थ हो सकते हैं, किन्तु वेदान्त की दृष्टिसे यह शीर्षक भ्रमात्मक है। 'सत्य' का मार्ग या 'सत्य' के लिये मार्ग एक असंगत बात है। 'सत्य' दूर नहीं है, तो उसका मार्ग फिर कैसे हो सकता है? सत्य अब भी तुम्हारे पास है, वह सदा से तुम्हारा अपना आप, तुम्हारी आत्मा है। तुम अब भी उसमें हो; नहीं-नहीं, तुम स्वयं सत्य हो। तुम वही हो। इस तरह, "सत्यका मार्ग"—ऐसे शब्दों का व्यवहार करना ही ग़लती है। ईश्वर-ज्ञान की प्राप्ति, आत्मदेव (ब्रह्म) का अनुभव ऐसी वस्तु नहीं है जिसे सिद्ध करना है, ऐसी चीज़ नहीं है जिसे पाना है, ऐसा काम नहीं है जिसे पूरा करना है, वह तो पूरा हुआ ही है। तुम तो अब भी वही हो। तुम्हें केवल इच्छाओं के जाल को जो तुम्हें फँसाए हुए है, तोड़ डालना है, तुमने जो कुछ किया है केवल उसे तुम्हें मिटाना है। यदि 'करने' शब्द के विधि-आत्मक अर्थ ग्रहण किये जायें, तो ईश्वर (सत्य) की

प्राप्ति के लिये तुम्हें कुछ भी नहीं करना है। अपना कारागार बनाने में तुमने जो कुछ किया है सिर्फ़ उसे मिटा भर दो और फिर तुम ईश्वर ही हो, सत्यस्वरूप ही हो। किन्तु जो कुछ किया जा चुका है उस पर हरताल फेर देने का यह काम कुछ लोगों के लिये अति कठिन हो जाता है और इस लिये "सत्य के मार्ग" के सम्बन्ध में हम अपने किये हुए को मिटाने की विधि पर विचार करेंगे। अपने बन्धनोंको तोड़ने में कुछ यत्न निस्संदेह करना पड़ेगा। अच्छा, तुम्हें बाँधने वाले ये फन्दे, ये बन्धन, ये जंजीरें और ये बेड़ियाँ क्या वस्तु हैं? तुम्हारे कान आज इस सत्य का आदर कर सकें या नहीं, अमेरिका वाले और यूरोपियन लोग इस कथन की सुन्दरता को आज समझ सकें या नहीं किन्तु इस की सत्यता में कोई अन्तर नहीं पड़ने का। सच तो यह है कि तुम्हारी सारी आसक्तियाँ और वासनायें, तुम्हारा राग-द्वेष और सांसारिक प्रेम ही तुम्हारे लिये बेड़ियाँ और ज़ंजीरें बनी हुई हैं। यही तुम्हें बाँधती हैं। यही तुम्हें ईश्वर को नहीं देखने देतीं, यही तुम्हारा कारागार है। तुम्हारी कामनायें तुम्हें बाँधती हैं। तुम दो मालिकों की सेवा नहीं कर सकते। तुम एक ही समय में परमेश्वर और माया की सेवा नहीं कर सकते। जब तक तुम शरीर के

दास हो, तब तक तुम विश्व के विधाता नहीं बन सकते। सत्य, आत्म-तत्त्व को प्राप्त करना अखिल विश्व का स्वामी बनना है। और कामनाओं को इष्ट बनाना बन्धन को स्वीकार करना है। दूसरे शब्दोंमें साँसारिक वस्तुओं, स्थूल पदार्थों की इच्छा करना ही तुम्हारी दासता, तुम्हारी गुलामी का कारण है। प्रत्येक मनुष्य ईसामसीह (महान् पुरुष) होना चाहता है, प्रत्येक मनुष्य सत्य का अनुभव करना चाहता है, सिद्ध और महात्मा बनना चाहता है, किन्तु इसका मूल्य चुकाने के लिये बहुत ही थोड़े लोग तैयार होते हैं, बिरला ही कोई मिलता है।

भारतवर्ष में एक बड़ा कसरती पहलवान् था। गोदना गोदवाने के लिये अपनी भुजा पर सिंह की तसवीर खुदवाने के लिये उसे नाई की ज़रूरत पड़ी। उसने नाई से अपनी दोनों भुजाओं पर एक बड़ा तेजस्वी सिंह अंकित कर देने को कहा। उसने कहा—मेरा जन्म सिंह राशि में हुआ था, लग्न घड़ी बड़ी अच्छी थी और मैं बड़ा बहादुर हूँ, ऐसा लोग मुझे समझते भी हैं। नाई ने सुई ली और सिंह चित्रित करना अर्थात् गोदना आरम्भ किया। किन्तु ज़रा-सी सुई चुभाते ही पहलवान को कष्ट मालूम हुआ। साँस

खींचकर वह नाई से बोला--"ठहरो-ठहर यही क्या, कर रहे हो ?" नाईने कहा कि मैं शेर की दुम अंकित करने लगा हूँ। वास्तव में यह मनुष्य सुई के चुभने की वेदना न सह सका और भद्दा-सा बहाना करके बोला—"तुम यह नहीं जानते कि शोक़ीन लोग अपने कुत्तों और घोड़ों की दुम कटवा डालते हैं इसलिये दुमकटा सिंह ही बड़ा बली सिंह समझा जाता है ? तुम सिंह की दुम क्यों बनाते हो ? दुम की कोई ज़रूरत नहीं।" नाईने कहा–"बहुत खूब, मैं पूँछ न अंकित करूँगा, सिंह के दूसरे अङ्ग गोदूँगा।" नाईने फिर सुई उठाई और उसके शरीर में भोंकी। इस बार भी वह न सह सका और झुँझलाकर बोला–"अब तुम क्या करने वाले हो ?" नाईने कहा–"अब मैं सिंह के कान खींचने लगा हूँ।" पहलवान ने कहा–"अरे नाई ! तू बड़ा मूर्ख है। क्या तू यह नहीं जानता कि लोग अपने कुत्तों के कान कटवा डालते हैं ? लम्बे कानों वाले कुत्ते घरों में नहीं रखे जाते। क्या तू यह नहीं जानता कि बिना कानों का ही सिंह सर्वोत्तम होता है ?" नाई रुक गया। कुछ देर के बाद नाई ने फिर सुई उठाई और फिर गोदने लगा। पहलवान उसे न सह सका और बिगड़कर बोला–"अब तू क्या करने लगा है नाई ?" नाई ने कहा–"अब मैं सिंह

की कमर गोदने लगा हूँ।" पहलवान ने कहा—"तूने हम लोगों का काव्य नहीं पढ़ा है ? भारतीय कवियों का किया हुआ श्रेष्ठ वर्णन तूने नहीं पढ़ा है ? शेरों की कमर हमेशा बहुत छोटी, पतली, नाममात्र की चित्रित की जाती है। तुझे सिंह की कमर अंकित करने की ज़रूरत नहीं।" अब तो नाईने अपने रंग और गोदने की सुई फेंक दी और गोदवाने वालेसे कहा—"बस, आप सिंह गुदवा चुके।"

यह एक मनुष्य है जो अपने को सिंह राशि में जन्मा बतलाता है; जो बड़ा पहलवान, बड़ा कसरती होने का दम भरता है; यह आदमी अपने को शेर कहता है। वह अपने सारे बदन पर सिंह गुदवाना चाहता है, किन्तु सुई का चुभना सह नहीं सकता। अधिकांश मनुष्य ऐसे ही होते हैं जो ईश्वर को देखना चाहते हैं, वेदान्त का अनुभव करना चाहते हैं, इसी क्षण, इसी घड़ी में, पूर्ण सत्य को जानना चाहते हैं, प्रत्येक बात को पूरा कर डालना चाहते हैं, आधे मिनट में ईसामसीह (महान् पुरुष) हो जाना चाहते हैं। पर उस शेर (सत्य) को अपने अन्तःकरण में अंकित करवा लेने का उस सदाचार रूप शेरको अपने हृदय में चित्रित करवाने का जब समय आता है, तब वो डंक लगते ही भाग खड़े होते हैं, तब बहानाबाज़ी

करके आगा-पीछा करने लगते हैं। "वस्तु तो मैं चाहता हूँ, पर दाम न दूँगा।"

ईश्वरानुभव और सत्य को प्राप्त करने के लिये, तुम्हारी प्यारी-से-प्यारी कामनायें और इच्छायें आर-पार छेदी जायँगी, तुम्हें अपनी प्रियतम वासनाओं और आसक्तियों को काटना होगा, तुम्हें अपने समस्त अन्धविश्वासों और पक्षपातों को मिटा देना होगा, तुम्हें अपनी सकल पूर्व कल्पित कल्पनाओंको काटकर फेंक देना होगा। नीच और तुच्छ बनाने वाले सभी आकांक्षाओं से तुम्हें अपना पिण्ड छुड़ाना होगा, तुम्हें अपने को पवित्र करना पड़ेगा। विशुद्धता, विशुद्धता। बिना मूल्य चुकाये तुम ईश्वर को नहीं पा सकते, तुम अपने जन्मजात स्वत्व को लाभ नहीं कर सकते। शुद्ध हृदय वाले सचमुच धन्य हैं, क्योंकि उन्हें परमेश्वर के दर्शन होंगे। किन्तु हृदय की यह शुद्धता, विमलता क्या वस्तु है? केवल वैवाहिक पापों से बचने ही का नाम हृदय की शुद्धता नहीं है। यह तो उसके अर्थ हैं ही; किन्तु और भी बहुत कुछ उसके अर्थ में है। आज ये वचन तुम्हें चाहे अच्छे लगें, या न लगें, किन्तु एक दिन आवेगा जब ये तुम्हें अवश्य अच्छे लगेंगे, आज या कल तुम्हें इसी परिणाम पर पहुँचना ही पड़ेगा। तात्पर्य यह कि आसक्तिमात्र, वह चाहे आपको अपने

घर से हो, चाहे अपने पिता, माता या बच्चे से और चाहे अपने कुत्ते से हो या अपनी घड़ी से, छोटी-बड़ी किसी चीज़ से हो, सत्य के जिज्ञासु के लिये, तुरन्त ही पूर्ण सत्य पर अधिकार पाने के इच्छुक के लिए वह आसक्ति उतनी ही नीच और दुर्बल बनाने वाली है, जितना कि व्यभिचार। हृदय की शुद्धता का अर्थ है संसार के पदार्थों की आसक्ति से अपने आप को मुक्त कर लेना, त्याग, पूर्ण त्याग, उससे इतर कुछ नहीं। यह है हृदय की पवित्रता का अर्थ। शुद्ध अन्तःकरण वाले सचमुच धन्य हैं, क्योंकि वे ईश्वर के दर्शन करेंगे। इस पवित्रता को प्राप्त करो और तुम्हें ईश्वर के दर्शन होंगे।

प्राचीन इतिहास में अटलांटा की एक बड़ी ही सुन्दर कथा है। उसमें ऐसा कहा है कि जो मनुष्य उससे व्याह करना चाहता था, उसे उसके साथ दौड़ की बाज़ी लगानी पड़ती थी। कोई भी मनुष्य दौड़ में उससे आगे नहीं निकल पाता था। एक मनुष्य ने अपने देवता जूपिटर की शरण ली और दौड़ में अटलांटा से आगे निकल जाने के लिये अपने इष्टदेव से प्रार्थना की। देवता ने उसे एक बड़ी ही विलक्षण राय दी। उसने इस मनुष्य से कहा कि दौड़ के रास्ते पर सोने की ईंटें बिछा दो। सच तो यह है कि दौड़

से अटलांटा को जीत लेनेके लिये कोई और सहायता जूपिटर अपने इस भक्त को नहीं दे सकते थे। अखिल विश्व में सब से तेज और बलवान होने का बरदान अटलांटा को सुरेश (जूपिटर) से पहले ही मिल चुका था। बस जूपिटर के इस भक्त ने दौड़ के पूरे चक्कर पर सोने की ईंटें डाल दीं। और अटलांटा को अपने साथ दौड़ने के लिए आह्वान किया। दोनोंने दौड़ना आरम्भ किया। यह मनुष्य स्वभावतः अटलांटा से बहुत दुर्बल था। एक क्षण में वह उससे आगे निकल गई। किन्तु जब वह मनुष्य उस की नज़र से ओट हो गया, तब उस की दृष्टि रास्ते पर पड़ी हुई सोने की ईंटों पर गई और वह उन्हें बटोरने को रुक गई। इस प्रकार जब वह सोने की ईंटें बटोरनेमें लगी थी, तब वह भक्त उससे आगे निकल गया। इसके एक या दो मिनट बाद उसने फिर उसे पकड़ लिया; किन्तु फिर दौड़ के चक्कर की बाईं तरह उसे दूसरी ईंट दिखाई दी। वह उस ईंट को उठाने गई और ले आई। इस बीच में जूपिटर का वह भक्त उससे आगे निकल गया; किन्तु कुछ ही देर में अटलांटा ने उसे फिर पकड़ लिया। फिर उसे कुछ और सोने की ईंटें मिलीं। वह उन्हें उठाने के लिए रुकी। इस बीच में वह आदमी फिर आगे निकल गया। यही होता

रहा। दौड़ समाप्त होने तक अटलांटा के पास सोने का बड़ा भारी बोझ हो गया। इस बोझे को ढोकर दौड़ में आगे निकल जाना उसके लिये बड़ा कठिन हो गया; अन्त में वह आदमी जीत गया; अटलांटा हार गई। शर्त के अनुसार अटलांटा के साथ उसका विवाह हो गया। अटलांटा उसे मिल गई। अटलांटा की बटोरी हुई सोने की ईंटें भी उसे मिल गईं। उसे सभी कुछ मिल गया।

धर्म के रास्ते पर, सत्य के मार्ग पर जो लोग चलना चाहते हैं, उनमें अधिकांश का यही ढंग है। सत्य के मार्ग पर जब तुम चलना शुरू करते हो, तब तुम्हें अपने आस-पास अनेक प्रकार के मायिक आकर्षक और लौकिक प्रलोभन मिलते हैं। किन्तु ज्यों ही तुम उन सांसारिक प्रलोभनों तथा सुखों को भोगने के लिए तैयार होंगे, त्योंही तुम अपने को पिछड़ा हुआ पाओगे। तुम दौड़ में हारने लगोगे। अपना समय व्यर्थ गँवा दोगे और अपना पथ कंटकाकीर्ण बना लोगे, नहीं-नहीं, अन्त में अपना सर्वस्व खो बैठोगे। साँसारिक आसक्ति और भौतिकता से सतर्क रहो। साँसारिक सुखों को भोगते हुए तुम कदापि सत्य को नहीं पहुँच सकते। कहावत है कि यदि तुम सत्य को

स्वीकार करोगे, तो साँसारिक सुखों को भोगने के योग्य न रह जाओगे। सांसारिक सुखोंको तुम भोगो, तो सत्य तुम्हारे हाथ से निकल जायगा, तुम से आगे बढ़ जायगा। 'राम' तुम से आज सत्य यथार्थ कह रहा है। अनेक लोग 'राम' के पास आते हैं और बार-बार उससे कहते हैं कि वे आत्मानुभव के इच्छुक हैं। तुम इसी क्षण आत्मानुभव कर सकते हो। विषयासक्ति से अपने को मुक्त कर लो और ईर्ष्या और राग-द्वेष की जड़ काट डालो और तुम इसी क्षण मुक्त हो। अच्छा ईर्ष्या क्या है, घृणा क्या है? वह है औंधा अनुराग। किसी से हम घृणा तभी करते हैं, जब किसी अन्य वस्तु पर हमारी आसक्ति होती है। यहाँ पर आप प्रश्न करेंगे कि अपने लड़कों भाई-बहनों पति-पत्नियों से हम कैसे छुटकारा पा सकते हैं? यह तो तुम्हीं जानो। कैसे और किस उपाय से? यह स्वयं तुम्हारे जानने की बात है; किन्तु सच यह है कि सत्य ही तुम्हारा पिता होना चाहिये, सत्य ही तुम्हारी माता, सत्य ही तुम्हारी स्त्री, सत्य ही तुम्हारा बाबा, तुम्हारा शिक्षक, तुम्हारा घर तुम्हारी दौलत, तुम्हारा सब कुछ होना चाहिये। प्रत्येक पदार्थ से अपनी आसक्ति को हटा लो और एक वस्तु, एक तत्त्व, एक सत्यस्वरूप, एक अपने आत्मा पर अपने

आपको एकाग्र करो; तुरन्त ही उसी क्षण तुम्हें आत्मानुभव की प्राप्ति होगी।

भारतीय भाषा में एक सुन्दर गीत है, जिसे यहाँ गाने की कोई ज़रूरत नहीं। गीत का अर्थ यह है कि यदि सत्य को पाने के रास्ते में तुम्हारा पिता विघ्नकर्ता हो, तो उसी तरह उसे रौंदकर चले जाओ, उसी तरह उसे पार कर जाओ, जिस तरह भारत के एक वीर बालक प्रह्लाद ने अपने पिता को त्याग दिया था, क्योंकि वह उसके सत्यानुभव के मार्ग में कंटक बना था। यदि सत्य को अनुभव करने के मार्ग में तुम्हारी माता बाधक बनती हो, तो उसे त्याग दो यही बात नई इंजील (नया टेस्टामिंट) कहती है। हिन्दू इंजील भी यही कहती है। अपने माता-पिता के कल्याणके लिये सत्यको प्यार करो। अपने माता-पिता का वहीं तक आदर करो; जहाँ तक वे सत्य की ओर तुम्हारी उन्नति को नहीं रोकते। यदि तुम्हारा भाई तुम्हारे सत्यानुभव के मार्ग में खड़ा होता है, तो उसे उसी तरह दूर कर दो जिस तरह विभीषण ने अपने बड़े भाई रावण को दूर कर दिया था। यदि तुम्हारी स्त्री तुम्हारे सत्य-प्राप्तिके मार्ग में विघ्नरूप है, तो उसे ठीक भर्तृहरि की तरह दूर हटा दो। यदि तुम्हारा पति तुम्हारे सत्य-अनुभव के मार्ग

में रोड़ा बनता है, तो मीराबाई की भाँति उसे तिलांजलि दे दो। यदि तुम्हारा गुरु, तुम्हारा धर्म पिता, तुम्हारा पथ-प्रदर्शक तुम्हारे सत्य-अनुभव के मार्ग में बाधा डालता है, तो उसे भीष्म की भाँति फेंक दो अर्थात् परे कर दो, क्योंकि तुम्हारा असली सम्बन्धी, तुम्हारा सब से सच्चा मित्र केवल सत्य है और सब नातेदार तथा साथी क्षणस्थायी वा अस्थिर हैं, एक दिन के हैं, किन्तु सत्य सदा तुम्हारे साथ है। सत्य तुम्हारा सच्चा अपना आप समीप है। सत्य तुम्हारे माता-पिता की अपेक्षा तुम्हारे अधिक समीप है। अतएव राजा-प्रजा, माता-पिता, बाल-बच्चों, इष्ट-मित्रों हरएक से सत्य का अधिक मान करो।

भारत के एक राजाके जीवन से एक बड़ा अच्छा दृष्टान्त मिलता है। वह सत्य के मार्ग का पथिक था। कहते हैं कि बरफ़ में अपनी देह गला देने को वह हिमालय पर चढ़ रहा था। इस की बड़ी लम्बी चौड़ी कथा है। तुम्हें समग्र कथा सुनाने की 'राम' को ज़रूरत नहीं है। किसी कारण से किसी गुरुतर कारण से वह अपनी स्त्री और अपने चार भाइयों के साथ हिमालय की चोटियों पर जा रहा था। कहते हैं कि ऐसा करके वह धर्म-पथ पर चल रहा था, वह सत्य के अन्वेषण के लिये जा रहा था। वह आगे

चल रहा था, बढ़ता चला जाता था। उसका छोटा भाई उसके पीछे जा रहा था और उसके छोटे भाई के बाद उसका एक और भाई था और इस तरह पर ठीक क्रम से सब भाइयों के पीछे इस राजा की अर्धाङ्गी थी। वह आगे जा रहा है, उसका मुख अपने लक्ष्य की ओर है और आखें सत्य पर जमी हुई हैं। उसने सुना कि उस की रानी उसके पीछे विलाप कर रही है उसके पैर लड़खड़ाते थे, वह उसका पीछा नहीं कर सकती थी, वह थक गई थी और मरणासन्न थी। किन्तु राजा ने अपना मुख उस की ओर नहीं फेरा। उसने अपनी स्त्रीसे कहा, "कुछ कदम आगे बढ़ा कर मेरे पास आ जाओ तब मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा। आओ मेरे पास आ जाओ, मुझ तक आ जाओ।" किन्तु तीन पग बढ़कर वह उसके पास न पहुँच सकी। वह बहुत पीछे रह गई थी, उसके पास न पहुँच सकी और राजा भी पीछे नहीं लौटा। सत्य में एक पग भी पीछे लौटने की अनुमति नहीं होनी चाहिये। सम्राट् युधिष्ठिर कदापि एक पग भी पीछे न लौटेंगे। स्त्री लड़खड़ा कर गिर जाती है, किन्तु उसके लिये सम्राट् सत्य की ओर से मुँह नहीं फेर सकता। तुम्हारे पूर्व जन्मों में तुम्हारी हज़ारों स्त्रियाँ हो चुकी हैं और यदि तुम्हारे कुछ भावी जन्म हैं, तो

न जाने फिर कितनी बार तुम्हारा विवाह होगा; न जाने कितने तुम्हारे नातेदार हो चुके हैं और भविष्य में कौन जाने कितने सम्बन्धी होंगे। इन सम्बन्धियों और बन्धनों के लिये तुम्हें सत्य से मुँह न फेरना चाहिये। आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, कोई चीज़ तुम्हें लौटाने न पावे। अपनी स्त्री की अपेक्षा सत्य का अधिक आदर करो। भगवान् का अधिक सम्मान करो। सत्य का सम्पूर्ण मानव जाति से सम्बन्ध है, आत्मदेव सर्वकालीन है, नित्य है और तुम्हारे साँसारिक बन्धन ऐसे नहीं हैं, वे क्षणिक हैं। इस कानून को ध्यान में रक्खो कि जो कुछ वास्तव में तुम्हारे लिये हितकर है, वह तुम्हारी स्त्री और तुम्हारे साथियों के लिये भी अवश्य हितकर है। यदि तुम्हें समझ पड़े कि अपनी स्त्री से अलग रहने में वास्तव में तुम्हारी भलाई है, तो याद रक्खो कि तुम से अलग रहना उसके लिये भी वास्तव में हितकर है। यह नियम है। जो सत्य या परमेश्वर तुम्हारे व्यक्तित्व या अस्तित्त्व के मूल में है, वही तुम्हारी स्त्री के व्यक्तित्व का भी मूलाधार है। सम्राट् युधिष्ठिर की रानी गिर पड़ी। किन्तु राजा सीधा चला गया और अपने भाइयों से पीछे चले आने को कहा। कुछ देर तक वे उसके साथ दौड़े, किन्तु अब तो सबसे छोटा

भाई उसके साथ चलने में असमर्थ हो गया। थकावट के मारे वह लड़खड़ाने लगा और जब गिरने को हुआ–तब चिल्लाया—"भाई ! भाई युधिष्ठिर ! मैं मरता हूँ, मुझे बचाओ, मुझे...।" राजा युधिष्ठिर ने लक्ष्य (सत्य) से अपनी आँखें नहीं घुमाईं; वह बढ़ता ही गया, आगे ही बढ़ता गया। उसने अपने भाई से केवल पुकार कर कहा कि "दो या तीन पग दौड़कर मेरे पास पहुँच जाने की हिम्मत करो और फिर मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा; परन्तु किसी भी कारण से अपने साथ तुम्हें लेने को मैं एक पग भी पीछे नहीं लौट सकता।" वह आगे बढ़ता जा रहा है। सब से छोटा भाई मर गया। कुछ देर बाद दूसरा भाई चिल्लाया, जो अब सब से पीछे था और वह भी लड़खड़ाने वाला ही था। उसने सहायता के लिये पुकारा–"भाई ! भैया युधिष्ठिर ! मेरी सहायता करो, मेरी मदद करो, मैं गिरा चाहता हूँ।" किन्तु भाई युधिष्ठिर पीछे नहीं लौटता। वह बढ़ा चला जाता है। इस तरह सब भाई मृत्युको प्राप्त हुए, किन्तु महाराजा युधिष्ठिर टस-से मस न हुआ। एक पग भी नहीं लौटा। वह चला ही जाता है, धर्म के मार्ग पर वह बढ़ता ही जाता है। आगे चलकर कहानी यों है कि युधिष्ठिर सत्य की सर्वोच्च चोटी पर पहुँच गया, जब

वह अभीष्ट स्थान पर पहुँच गया, तब स्वयं सत्य-स्वरूप परमात्मादेव उसके सामने आविर्भूत हुआ। जैसा कि हमें इंजील में पढ़ने को मिलता है कि परमेश्वर कपोत के रूप में दिखाई पड़ा। उसी तरह हिन्दू धर्म-शास्त्रों में भी किसी-किसी व्यक्ति को देवदूत या बैकुण्ठपति इन्द्र के रूप में ईश्वर के दर्शन देने की बात हमारे पढ़ने में आती है। इस तरह आगे कथा में वर्णित है कि जब महाराजा युधिष्ठिर सत्य के शिखर पर पहुँच गया, तब मूर्तिमान् सत्य ने प्रकट होकर उससे सशरीर बैकुण्ठ चलने को, स्वर्गारोहण करने को कहा। जिस तरह आप इंजील में लोगों का जीते-जी स्वर्गारोहण पढ़ते हैं, उसी तरह महाराजा युधिष्ठिरसे जीते-जी स्वर्गारोहण करने की प्रार्थना होने की यह कथा है। तब अपनी दाहिनी ओर देखने पर उसे एक कुत्ता अपने पास दिखाई दिया। राजराजेश्वर युधिष्ठिरने कहा—"ऐ परमात्मदेव! ऐ सत्य! यदि तुम मुझे उच्चतम बैकुण्ठ को ले चलना चाहते हो, तो इस कुत्ते को भी मेरे साथ आपको ले चलना पड़ेगा। इस कुत्ते को भी मेरे साथ श्रेष्ठतम स्वर्ग को चढ़ा ले चलिये।" आगे कहानी कहती है, देहधारी परमेश्वरने कहा—"महाराज युधिष्ठिर! ऐसा नहीं हो सकता। कुत्ता इस योग्य नहीं है कि सर्वश्रेष्ठ

स्वर्ग को पहुँचाया जाये, कुत्तेको अभी अनेक योनियों में जन्म लेना है, कुत्ते को अभी मनुष्य योनि में जन्म लेना है और उत्तम जीवन व्यतीत करना है। उसे पवित्र और शुद्ध मनुष्य की तरह अभी रहना है और तब वह परम स्वर्गको चढ़ाया जायेगा। तुम सदेह सर्वश्रेष्ठ स्वर्गमें जाने के योग्य हो; किन्तु कुत्ता नहीं है।" तब तो महाराजा युधिष्ठिर बोले—"ऐ सत्य ! ऐ परमेश्वर ! मैं यहाँ तुम्हारे लिये आया हूँ, न कि स्वर्ग या बैकुण्ठ के लिये। यदि आप मुझे सर्वश्रेष्ठ बैकुण्ठमें ले जाना और वहाँ सिंहासन पर बैठाना चाहते हैं, तो आपको इस कुत्ते को भी मेरे साथ ले चलना पड़ेगा। मेरी स्त्री मेरे साथ न आ सकी, वह धर्मके मार्ग पर डगमगा गई। मेरा सब से छोटा भाई मेरे साथ न चल सका, वह सत्य के मार्ग पर कचिया गया, मेरे साथ दूसरे भाई मेरा साथ न दे सके, उन्होंने मुझे छोड़ दिया, वे दुर्बलताके वशीभूत हो गये, वे प्रलोभनोंमें फँस गये और वे मेरे साथ नहीं चल सके। अकेला यह कुत्ता मेरे साथ आया है। यह कुत्ता है। इसने दुःख-दर्द में मेरा साथ दिया है, यह मेरे प्रयत्नों में मेरा साँभी हुआ है, मेरे संग्रामों में इसने हिस्सा लिया है, मेरी चिन्ताओं में हाथ बटाया है, मेरे साथ इसने परिश्रम किया है। यह

कुत्ता है। जब इस कुत्ते ने मेरी कठिनाइयों में मेरे कठिन प्रयत्नों और झंझटों में मेरा साथ दिया है, तब मेरा बैकुण्ठ या स्वर्ग वह क्यों न भोगेगा ? मैं तुम्हारे स्वर्ग या बैकुण्ठ को कदापि न जाऊँगा। यदि तुम इस कुत्तेको उस बैकुण्ठ या स्वर्गमें मेरा साँझीदार न बनाओगे। यदि इस कुत्ते को तुम मेरे साथ नहीं आने देते, तो मुझे तुम्हारे बैकुण्ठ की ज़रूरत नहीं है।" कथा बताती है कि देहधारी सत्य या ईश्वर ने एक बार फिर महाराज युधिष्ठिर से कहा—"कृपा करके यह अनुग्रह मुझसे न चाहो, अपने साथ इस कुत्तेको ले चलने के लिये मुझसे न कहो।" किन्तु महाराज युधिष्ठिर ने कहा—"हे ब्रह्म ! आप चलते हूजिये। आप देहधारी सत्य या परमेश्वर नहीं हैं। आप कोई असुर हैं। आप परमेश्वर या सत्य नहीं हो सकते क्योंकि यदि आप सत्य होते तो अपने सामने कोई अन्याय क्यों होने देते ? क्या आपके ध्यान में यह नहीं आता कि यदि केवल मुझे स्वर्ग का भोग देते हैं और इस कुत्ते को मेरे सुख का साँझीदार नहीं बनाते तो आप इस कुत्ते के साथ अन्याय करते हैं, जिसने मेरे कष्टोंको बँटाया है। यह अनीति देहधारी सत्य या परमेश्वर को छजती नहीं है।" कथा बताती है कि इस पर देहधारी सत्य या परमेश्वर अपने सच्चे

रूपमें प्रकट हुआ और लो, वह कुत्ता, कुत्ता न रह गया बल्कि स्वयं सर्वशक्तिमान् महाप्रभु के पूर्ण तेज से युक्त दिखाई पड़ा। उस राजा की परख और परीक्षा हो रही थी और अन्तिम परीक्षा में, अन्तिम कस में, वह सफल सिद्ध हुआ।

इस तरह पर तुम्हें भी सत्य के पथ पर चलना है। यदि तुम्हारे अति नगीची और प्रियतम साथी और कुटुम्बी भी धर्म के रास्ते पर तुम्हारे साथ न चल सकें, तो उनको अपने मित्र न समझो और यदि एक कुत्ता सदाचार के पथ में तुम्हारा साथ दे, तो उस कुत्ते को तुम्हें अपना अति नगीची और प्रियतम प्राणी समझना होगा। इस तरह तुम्हें अपने धर्माचरण के सहयोग के सिद्धान्त पर अपने मित्र बनाने चाहियें। किसी ऐसे को अपना मित्र न बनाओ, जो तुम्हारी दुष्प्रकृति का पक्षपाती हो। यदि इस सिद्धान्त पर तुम अपने मित्र चुनोगे कि उनमें भी वही कुप्रवृत्तियाँ हैं जो तुम में हैं, तो पीड़ा, चिन्ता और विकट वेदना तुम्हें अवश्य भोगनी पड़ेगी।

एक हिन्दू महात्मा के सम्बन्धमें कहते हैं कि एक बार वह भूखा सड़क पर जा रहा था। आप जानते हैं कि हिन्दुस्थान में महात्मा लोग जब भूखे होते हैं,

तब पहाड़ या गुफ़ा से उतरकर मार्ग पर विचरते हैं और शरीर–रक्षा निमित्त भोजन माँगते हैं। बहुत कम अवसरों पर ही वे सड़कों पर आते हैं। आमतौर पर वे नगरों से बाहर वनों में रहते हुए ईश्वर के ध्यान में अपना सारा समय बिताते हैं। भूखे महात्मा को भोजन कराया गया। (यदि 'राम' भी कुछ लेता है, तो उसे क्षमा करने के लिये आपके पास यह उचित कारण है।) एक महिला उसके खाने के लिये उत्तम भोजन लाई। उसने रोटी लेकर अपने रूमाल (अंगोछे) में रख ली और भारतीय साधुओं के दस्तूर के अनुसार घर से निकलकर जंगल की राह ली। वहाँ उसने रोटी पानी में डाल दी और भिगोकर खा ली। दूसरे दिन फिर मामूली समय पर वह नगर में आया। फिर वही महिला उसके पास गई और कुछ बहुत ही स्वादिष्ट भोजन उसने उसे खाने को दिया। वह लौट गया। तीसरे दिन भी वही स्त्री स्वादिष्ट आहार लाई और साधु को देते समय उसने कहा–"मैं तुम्हारी राह देखा करती हूँ। आज तुम्हारी राह देखते-देखते, दरवाज़े की ओर ताकते-ताकते मेरी आँखें दुःखने लगी हैं। तुम्हारे नेत्रोंने मुझे मोह लिया है।" उस महिलाके मुख से निकले हुए ये वचन सुनकर साधु चला गया। वह किसी दूसरे दरवाज़े

पर गया, जहाँ, उसे कुछ भोजन मिला। उस भोजन को लेकर वह वन को चला गया और उस पहिली महिला के दिये हुए भोजन को जिसने उसके प्रति अपने प्रेमभाव की सूचना दी थी, उसने नदी में फैंक दिया और दूसरी महिला के भेंट किये हुए भोजन को उसने खाया। क्या आप सोच सकते हैं कि दूसरे दिन उसने क्या किया? लोहे के सूजे को खूब तपाकर उसने अपनी आँखें छेदकर निकाल डालीं और उनको अपने अंगोछे में बाँधकर एक लकड़ी के सहारे बड़ी कठिनाई से रास्ता टटोलते-टटोलते वह उस महिला के घर पर पहुँचा, जिसने उससे प्रेम प्रकट किया था। उसने महिला को बड़ी उत्सुकता से अपनी राह देखते पाया। साधु की आँखें ज़मीन पर गड़ी हुई थीं। महिला ने इस पर ध्यान नहीं दिया कि साधुने अपनी आँखें छेदकर बाहर निकाल ली हैं। ज्यों ही वह कोई अति स्वादिष्ट पदार्थ उसके खाने के लिये देने लगी, त्यों ही अपने नेत्र गोलक उसे भेंट करते हुए साधु बोला—"माता! माता! इन नयनों को ले लीजिये, क्योंकि इन्होंने तुम्हें मोहित किया था और तुम्हें बड़ा कष्ट दिया था। इन नेत्रों को अपने पास रखने का तुम्हें पूरा अधिकार है। माँ! तुम्हें इन नयनों की चाह थी। इन्हें लो, अपने पास रक्खो

इनको, इन्हें प्यार करो और इनका सुख भोगो, इन नेत्र-गोलकों का तुम जो चाहो सो करो; किन्तु ईश्वर के लिये, दया करके मेरी अग्रसर गति को, मेरी आध्यात्मिक उन्नति को न रोको। सत्य के मार्ग से ठोकर मारकर मुझे गिराने की व्यवस्था न करो।

अरे भाइयो! अब हम देख सकते हैं कि यदि तुम्हारी आँखें तुम्हारी राह में रोड़ा हैं तो उन्हें कैसे निकाल फेंकना चाहिए। तुम्हारा सारा जीवन अँधेरे में नष्ट हो जाने से यह अच्छा है कि तुम्हारी देह बिना प्रकाश के ही रहे, यही सच्चा मार्ग है।

यदि तुम्हारे नेत्र तुम्हारे सत्यानुभव के मार्ग में रोड़े हों तो उन्हें छेदकर निकाल डालो। यदि तुम्हारे कान तुम्हें फुसलाते और पीछे रखते हैं, तो उन्हें काट डालो। यदि तुम्हारी स्त्री, श्री, सम्पत्ति-दौलत या कोई भी चीज़ तुम्हारे सन्मार्ग में विघ्न करती है, तो उसे दूर कर दो। यदि सत्य को तुम उतना ही प्यार कर सको, जितना कि अपनी घरवाली स्त्री अथवा नातेदारों को प्यार करते हो। यदि तुम परमेश्वर, आत्मा या आत्मानुभव को उतनी ही लगन और रुचि के साथ प्यार कर सको, जितने जोश और उत्साह से अपनी स्त्री को प्यार करते हो।

अपनी स्त्री पर जितना प्रेम दिखलाते हो, यदि उस का आधा भी तुम परमेश्वर को प्यार कर सको तो इसी क्षण तुम्हें सत्य की प्राप्ति हो जाय। जब धर्म पथ-पर चलना आरम्भ करते हो और प्रारम्भ में मिलने वाले प्रलोभनों पर विजय प्राप्त कर लेते हो, तब तुम्हें परमेश्वर का अनुभव होने लगता है। प्रारम्भिक प्रलोभनों पर विजय पाने पर तुम्हें क्या मालूम होगा। तब तुम्हें यह रास्ता पहले जैसा ऊटपटांग और सुन्दरता-रहित न जान पड़ेगा, क्योंकि यह सारा मार्ग बीहड़ नहीं है। कहा जाता है कि सत्य का मार्ग सुई के नाके से भी अधिक तंग है। वेदों में लिखा हुआ है कि सत्य का पंथ छुरे की धार के समान पैना और संकीर्ण है। किन्तु यह सम्पूर्ण सत्य नहीं है। प्रारम्भ में पंथ बहुत पैना और संकीर्ण जान पड़ता है, किन्तु जब आप साधारण प्रलोभनों को जीत लेंगे तब आगे अत्यन्त सुन्दर और सुगम रास्ता आपको मिलेगा। आप सम्पूर्ण प्रकृति को अपनी सहायता करते और प्रत्येक वस्तुको अपना पक्ष लेते हुए पावेंगे। ये कठिनाइयाँ, ये प्रलोभन, ये रुकावटें, ये प्रयत्न और ये विरोध केवल आपको डराने का यत्न करते हैं। ये आपको डराते और धमकाते हैं। किन्तु वास्तव में हानि नहीं पहुँचाते।

यदि तुम उनसे आँखें लड़ाकर उन की आँखें नीची कर सको, उन्हें भयभीत कर सको तो तुम्हें मालूम होगा कि ये कठिनाइयाँ केवल देखने मात्र को कठिनाइयाँ थीं, कठिनाइयाँ और प्रलोभन केवल मालूम पड़ने भर की कठिनाइयाँ और प्रलोभन थे। वरंच आप सम्पूर्ण प्रकृतिको अपनी ओर खड़ा हुआ पावेंगे। समग्र सृष्टि को अपनी टहल करने को तैयार पावेंगे। तब आप को यह पता लग जायगा।

एक हिन्दू धर्म-पुस्तक में जो भारत की इलियड प्रसिद्ध धर्म युद्ध पुस्तक है, और जिसमें संसार के अथवा अन्ततः भारत के सर्वश्रेष्ठ, शूरवीर राम की कथा वर्णित है, कहा हुआ है कि जब वे सत्यको खोजने गये, सत्यके पुनर्लाभ या अनुसन्धान के लिये गये, तब सम्पूर्ण प्रकृति ने अपनी सेवायें उनके अर्पण कर दीं। कहा जाता है कि बन्दर उनके सैनिक बने और गिलहरियोंने खाड़ी पर पुल बनाने में उनकी सहायता की। कहा गया है कि पक्षियों (जटायू) ने भी उन का पक्ष लेकर शत्रु पर विजय पाने में उनकी सहायता की। कहते हैं कि पत्थर अपने स्वभाव को भूल गये। पानी में फेंके जाने पर डूबने के बदले पत्थरोंने कहा—"हम इसलिए पानी पर तैरते रहेंगे, ताकि सत्य के

पक्ष की विजय हो।" उनमें यह कहा है कि वायु और आकाश रामके पक्षमें थे, अग्नि भी इनकी सहायक रही। पवन और तूफान ने भी उनका साथ दिया। अँगरेज़ी-भाषा में एक कहावत है कि वायु और लहरें सदा वीर के अनुकूल रहती हैं। समग्र प्रकृति उसी समय आप का पक्ष लेने लगती है, जब आप निरन्तर प्रयत्न में लगे ही रहते हैं, जब आप प्रारम्भिक दिखावटी कठिनाइयोंको जीत लेते हैं। शुरूके प्रलोभनों और झगड़ों को यदि आप जीत लें तो समग्र प्रकृति को आप की चेरी बनना पड़ेगा। सत्य पर डटे रहने का आग्रह करो तो तुम्हें विदित होगा कि तुम किसी साधारण लोक में नहीं रहते हो। दुनियाँ तुम्हारे लिये अद्‌भुत चमत्कारों की दुनियाँ बन जायगी, तुम्हारे चारों ओर अलौकिक घटनायें घटेंगी और धिक्कार उन देवताओं को जो तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति में तुम्हारी खिदमत न करें। प्रकृति उत्सुकता के साथ विश्व के शासक की मुसाहबी कर रही है। आप अखिल विश्व के स्वामी हैं, यदि सत्य के साथ आप डटे हुए हैं तो आप समग्र संसार के अधिपति हैं।

'राम' के विचार से संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष की, एक भारतीय महात्मा की जीवनी वर्णन करके 'राम' इस व्याख्यान को समाप्त करेगा। उसका नाम

है शमसतबरेज़। एक विचित्र परिस्थिति में इस मनुष्य का जन्म हुआ था। कहानी सच्ची है या झूठी, इससे हमें कोई मतलब नहीं। किन्तु कुछ-न-कुछ सत्य उसमें अवश्य होगा। उसके पिता के सम्बन्ध में कहा गया है कि एक समय वह अपने देशमें बड़ा ही निर्धन मनुष्य था। उस दीन–हीन व्यक्ति ने अपनी ज़िन्दगी पूरी तरह से ईश्वर-ध्यान में बिताई थी। वह भूल गया था कि उसका शरीर कभी जन्मा है। वह बिलकुल भूल गया था कि उसकी देह कभी इस लोक में थी भी। उसके लिये दुनियाँ कभी दुनियाँ थी ही नहीं। वह परमेश्वर था, पूर्ण ब्रह्म था और जिस तरह कभी-कभी किसी व्यक्ति की सारी देह किसी एक ख़याल से परिपूर्ण हो जाती है, एक ध्यान में पग जाता है उसी तरह नख से शिखा तक उसकी देह का प्रत्येक रोमकूप ब्रह्मज्ञान से पूर्ण, सचेतन हो गया था। कहा गया है कि जब वह सड़कोंपर चलता था, तब लोग उसके शरीर के रोमकूपों से यह गीत सुनते थे–"हक़, अनलहक़" जिसका अर्थहै–"ब्रह्म अहम्, अहम् ब्रह्मास्मि।" उस की जीभ पर सदा यह गीत रहता था—"अनलहक़, अनलहक़, ब्रह्म मैं हूँ, ब्रह्म मैं हूँ।" साधारण दुनियाँ के लोग उसके आस-पास जमा हो गये, उन्होंने उसे मार डालना चाहा।

उन्होंने उस पर धर्मद्रोह (कुफ्र) का अभियोग लगाया। वह अपने को ब्रह्म क्यों कहता है। किन्तु वह स्वयं ब्रह्म था, उसके लिये देह-देह नहीं थी, न दुनियाँ-दुनियाँ थी। "अनलहक़" शब्द जब उसके मुख से निकलते थे, तब उसे उनका भी ध्यान नहीं होता था। जिस तरह सोया हुआ मनुष्य ख़र्राटें लेता है, उसी तरह अपनी दृष्टि से वह बिलकुल परमेश्वर में डूबा हुआ था। और यदि "अनलहक़" शब्द उसके मुख से निकलते थे, तो वे सोये हुए मनुष्य के ख़र्राटों जैसे थे। लोगों ने उसे मार डालना चाहा पर उसके लिये मरना-जीना कैसा ! वह शरीर तो था ही नहीं, तब तुम किसे मारोगे ? तुम तो शरीर का वध करोगे, किन्तु उसकी अपनी दृष्टि में तो उस शरीर का कभी अस्तित्व था ही नहीं। उसके शरीरको मार डालो, किन्तु उसको इससे कौन पीड़ा हो सकती थी ? कहा गया है कि उसका शरीर सूली पर चढ़ाया गया। आप जानते हैं कि सलीब पर देह रखना एक सहज बात है, किन्तु वहाँ सलीब से भी एक बदतर चीज़ थी। यह एक लोहे की लम्बी छड़ थी जो सिरे की तरफ़ सुई की-सी नोकदार थी। और इस मनुष्य का हृदय लोहे की छड़ के ठीक सिरे पर रख दिया गया। लोहे की छड़ के पैने नुकीले सिरे को उस की ओर

अथवा हृदय चक्र को छेदकर पार निकल जाना था। इसी तरह से मनुष्य उन दिनों मारा जाता था। आप समझ सकते हैं कि यह सलीब से भी बुरा ढंग है। उस की देह इस तरह की सूली पर रक्खी गई। लोग कहते हैं कि जब उसकी देह उस सूली पर रक्खी हुई थी, तब भी उसका चेहरा तेज से दमक रहा था, उसके शरीर के रोम-रोमसे वही मधुर गीत निरन्तर निकल रहा था—"अनलहक़, अहम् ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूँ, परब्रह्म मैं हूँ, परब्रह्म मैं हूँ।" शरीर मृत्यु को प्राप्त हो गया है, किन्तु उसके लिये इससे क्या अन्तर पड़ सकता था। इस कथा से आप समझ सकते हैं कि यदि सत्य के लिये आप को अपनी देह दे देनी पड़े तो दे डालिये। यह अन्तिम आसक्ति, अन्तिम बन्धन भी तोड़ डालिये। सत्य के लिये, साँसारिक आसक्तियों, अनुरागों को दे देने की तो बात ही क्या है, सत्य के लिये आप को केवल साँसारिक आसक्तियोंको ही नहीं छिन्न-भिन्न करना पड़ेगा, किन्तु यदि शरीर देने की ज़रूरत पड़े, तो उसे भी दे देना होगा। इसी तरह पर आप सत्य के पथ पर चल सकते हैं। जब यह मनुष्य उस नुकीली छड़ पर लटक रहा था तब खून के कुछ बूँद उस की देहसे नीचे टपक रहे थे। कहानी बताती है कि लहू के उन क़तरों को एक युवती ने

बटोर लिया। यह जवान लड़की उसी साधु का सा ही विश्वास रखती थी, इस नौजवान लड़की के भी वैसे विचार थे जैसे प्रचारक के थे। उसने इस जमा किये हुए रक्त को पी लिया। लोग कहते हैं कि उस के गर्भ रह गया। बात सच हो या झूठ इससे हमारा विशेष मतलब नहीं है। यदि मसीह निष्कलंक गर्भसे उत्पन्न हो सकता है, तो वेदान्त के अनुसार यह बात भी सत्य हो सकती है, क्योंकि यह एक ऐसा मनुष्य था जो ईसामसीह से कम नहीं था, यथार्थ में अनेक बातों में वह उससे बढ़ा हुआ था। इस लड़की के एक लड़का उत्पन्न हुआ जो साधु हुआ, उसी की जीवनी 'राम' आपको सुनाना चाहता है। अपने प्रारम्भ से ही, अपने बचपनसे ही वह पूर्ण परमेश्वर था, वह अपने बाप से भी कहीं बढ़-चढ़ कर था। आप विश्वास करें, उस की जिह्वा से निकली हुई एक अति अपूर्व पुस्तक, एक बहुत बड़ा सद्ग्रन्थ है। इस महापुरुष ने कभी कलम उठाकर उसे नहीं लिखा। कहा जाता है कि उसके मुखसे सदा कविता ही निकलती थी, वह जो कुछ भी बोलता था काव्यमय ही होता था। किन्तु किस तरह का काव्य ? तुम्हारे अमेरिकन कवियों का अधम काव्य नहीं। यह यथार्थ में वास्तविक काव्य होता था। ब्रह्म-ज्ञान के

सिवाय और कुछ भी इसमें नहीं था। ईश्वरीय-कल्पनाओं से अलंकृत यह अति उत्कृष्ट काव्य होता था। इसका एक-एक शब्द सोने से तोले जाने के योग्य है, यदि उस की तोल की जा सकती है तो—

इसी मनुष्य के सम्बन्ध में एक बड़ी ही विचित्र बात कही जाती है। एक बार तमाशा करने वाले लोगों की एक मण्डली आई, आप सरकस या किसी दूसरी तरह का तमाशा समझ लीजिये। बादशाह को उन्होंने तमाशा दिखाया। बादशाह उन से बहुत खुश हुआ और एक हज़ार रुपये इनाम दिया। बाद में बादशाह को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। निस्सार तमाशों के लिये रोज़-रोज़ हज़ारों रुपये दे डालना महाराज ने उचित नहीं समझा। अपने हज़ार रुपये फेर लेने के लिये उसने एक चाल चली। उसने तमाशे वालों से सिंह का वेश धारण करने के लिये कहा और कहा कि यदि शेर का खेल पसन्द आ जायेगा तो तुम्हें कोई बड़ी भारी चीज़ इनाम दी जायेगी, नहीं तो तुम्हारी सब सम्पत्ति जुर्मानेमें ले ली जायेगी। ये लोग शेर का तमाशा न कर सकते थे, वे शेर का रूप या वेष बनाकर बादशाह को खुश न कर सकते थे। देखिये हिन्दूस्थान में ऐसे लोग हैं जो सब तरह के रूप बनाते हैं और कुछ जानवरों के रूप

में भी प्रकट होते हैं। जिन जानवरोंका वेष वे धारण करते हैं उन्हीं का प्रतिरूप वे सब तरह पर हो जाते हैं। किन्तु शेर का वेष धारण करना कोई आसान बात न थी। ये लोग इस साधु पुरुष के पास आये और आँसू बहाकर रोने धोने लगे। कथा कहती है कि सम्पूर्ण सृष्टि से तदात्म होने के कारण समग्र प्रकृति से एक और प्रत्येक से अभेद होने के कारण सहानुभूतिने इस महापुरुष के हृदय पर कब्ज़ा जमा लिया और इकबार्गी उसने उन लोगों से कहा कि तुम खुश हो जाओ मैं सिंह का वेष धारण करूँगा, मैं स्वयं शेर का खेल दिखाऊँगा। आगे कथा यों है कि दूसरे दिन जब बादशाह और उसके दरबारी सब-के-सब इस प्रतीक्षा में खड़े हुए थे कि तमाशा करने वाली मण्डलीका कोई आदमी सिंह की आकृति और रूप बना कर आता है या नहीं। तब एकाएक, मानों जादू के ज़ोर से, एक सच्चा शेर आँगन में कूद पड़ा। यह सिंह तुरन्त गरजने लगा। इसने बादशाह के बच्चे को झपट लिया और टुकड़े-टुकड़े करके चीर डाला। उसने एक दूसरे लड़के को उठा लिया और उसे आकाश में उछाल दिया। आप देखें कि यह उस मनुष्य का काम था जो वास्तव में परब्रह्म और परमात्मा था। इस व्यक्ति के लिये यह "मैं छोटा-

सा नन्हा शरीर हूँ" यह कल्पना अतीत काल की बात हो चुकी थी। इन शब्दों का उसके लिये कोई मूल्य ही न था। वह स्वयं परब्रह्म था। वह वही परमेश्वर था जो सिंहके रूप में चराचर सारे ब्रह्माण्ड के रूप में प्रकट हो रहा है। उसके एक क्षण के विचार ने उसे शेर बना दिया। जैसा तुम सोचते हो, वैसे ही तुम हो जाते हो और यदि तुम अपने आत्म स्वरूप को परमात्मा समझो और अनुभव करो, तो आपके सब विचार और मनोरथ अवश्य सफल होंगे, उसी क्षण पूरे होंगे। इसलिये इस पुरुष का विचार कि मैं सिंह बन सकता हूँ, तुरन्त सफल हुआ और वह सिंह हो गया। तमाशा समाप्त हुआ। लड़के को मारकर महात्मा चला गया, वास्तव में उसे शेर का स्वाङ्ग करने व न करने से कोई सरोकार न था और न वह इस देह या उस देह का आदर ही कर सकता था। वह व्यक्तियों को मानने वाला नहीं था। दूसरे शब्दों में उसमें देह-बुद्धिका नामो निशान भी न था। किन्तु बादशाह जामे के बाहर हो गया। बादशाह और उसके दरबारी महाकोप की मूर्ति बन गये। उन्होंने इस पुरुष से बदला लेना चाहा। वे उसके पास गये और बोले—"अजी महाराज! अजी महाराज!! कृपा करके इस लड़के को फिर जिला

दीजिये। यदि आप उसे मार सकते हैं, तो जिला भी सकते हैं। उसे जिला दीजिये, जिस तरह ईसा "कुम ब यज़्न अल्लः" कह कर मुर्दों को जिलाया करता था, उसी तरह आप ईश्वर के नाम पर उसे जीवित कर दें। 'कुम ब यज़्न अल्लः' का अर्थ है—"ईश्वर के नाम से उठ खड़े हो, ईश्वर की महिमा बखानो और चलो जी उठो, पुनर्जीवित हो।" उन्होंने महात्मा से उस लड़के को ईश्वर के नाम से फिर जिला देने के लिये कहा। महात्मा हँसे और बोले—"ईश्वरके नाम से फिर जी जाओ।" किन्तु लड़का चैतन्य न हुआ। महात्मा ने कहा–"लड़का ईश्वर के नाम से सजीव नहीं होता है।" उसने फिर कहा—"ईश्वर के लिये जी जाओ।' अब भी लड़का न जिया। महात्मा ने तीसरी बार फिर कहा–"जी जाओ और प्रभुके नाम से उठो और चलो।" किन्तु वह जीवित न हुआ। महात्मा मुस्कराया और बोला—"कुम ब यज़्नी" "मेरी आज्ञा से जी जाओ, मेरे आदेश से जी उठो।" अब तो लड़का जी उठा। "कुम ब यज़्नी" यह अन्तिम सत्य है। "मेरे आदेश से जी उठो।" महात्मा का यह आदेश सुनते ही लड़का पूर्णरूप से चंगा हो गया, सजीव हो गया। लड़का तो जी उठा, किन्तु लोगों को महात्मा की यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने

कहा–"यह महात्मा नहीं धर्म द्रोही, काफ़िर है। यह सम्पूर्ण कीर्ति खुद ही लेना चाहता है, यह अपने को ईश्वरके बराबर बनाना चाहता है। इसे मार डालना चाहिये, इसका वध हो जाना चाहिये, जीते जी उस की खाल उतार लेनी चाहिये।" महात्मा के लिये ये बातें अर्थ-रहित थीं। लोग उसे नहीं समझे थे। वह देह को, क्षुद्र व्यक्तित्व को परमेश्वर नहीं कह रहा था। वह तो अपनी हाड़-माँस युक्त देह को इसके पहले ही सूली पर चढ़ा चुका था। यहाँ लोग जीते जी उसकी खाल उतार लेना चाहते थे, कहानी आगे यों कहती है कि उस महात्मा ने तुरन्त अपने नखों को अपने सिर से लगाया और जिस तरह जानवरों की खाल उतार कर देह से अलग कर दी जाती है, उसी तरह अपने ही नखों से महात्माने अपनी खाल उतार डाली और काटकर फेंक दी। इसी अवसर की रची हुई उस की एक बड़ी उत्कृष्ट कविता है। उस गीत का मर्म यह है–"ऐ आत्मा! ऐ मेरे अपने आप!" वह अपने को सम्बोधन कर रहा है, "जिस के लिये संसार का विष अमृत है और ऐ आत्मा मेरे अपने आप! जिसके लिये संसार का अमृत (अर्थात्, इन्द्रियों का भोग) विष है, यहाँ लोग कुछ चाहते हैं। संसार मुर्दार है (यहाँ मुर्दार का अर्थ इन्द्रियोंका भोग

है) इसके अतिरिक्त कुछ और नहीं। दुनियाके सुख केवल निर्जीव शव जैसे हैं, उनके सिवा कुछ और नहीं, उन्हीं के पीछे जो दौड़ते हैं वो कुत्तों से किसी तरह बेहतर नहीं। यहाँ ये कुत्ते आये हुए हैं, इन्हें ये मुर्दार गोश्त खाने को दे दो।" कहानी चाहे सच्ची हो या झूठी, 'राम' को इससे कोई प्रयोजन नहीं। किन्तु कहानी का तत्त्व, कहानी की शिक्षा, तुम्हें अपने मन में रखनी चाहिये।

सत्य की प्राप्ति के लिये धर्म के रास्ते पर चलने के लिये, सारे अनुरागों को त्याग दो। साँसारिक कामनाओं और स्वार्थपूर्ण आसक्तियों से ऊपर उठो। यदि लौकिक आसक्तियों और स्वार्थ भरी इच्छाओं से आप अपने को आज़ाद कर लें तो फिर सत्य पाने की बात ही क्या है? आप स्वयं इसी क्षण सत्य हैं। "मुझे अधिक प्रकाश चाहिये और अधिक प्रकाश चाहिये।" यह मूर्खों की प्रार्थना है। तुम्हें ऐसी प्रार्थना करने की ज़रूरत नहीं। प्रकाश को बुलाने के लिये आपको ऐसी एक भी प्रार्थना करने की ज़रूरत नहीं है, यदि आप अपने को इसी पल अभिलाषाओं से शून्य कर लें, यदि आप अपने को सारी साँसारिक प्रीतियों एवं आसक्तियों से छुटकारा पा लें तो आप

का बेड़ा पार है। आप समझ लें कि आप की प्रत्येक इच्छा या कामना आपका एक भाग कतर लेती है, आपको अपने आपका एक छोटा अपूर्णांक बनाकर छोड़ जाती है। पूर्ण मनुष्य का दर्शन हमारे लिये कितना दुर्लभ है! पूर्ण मनुष्य तो अनुभवी पुरुष है, पूर्ण मनुष्य सत्य स्वरूप है। प्रत्येक अभिलाषा या कामना आपको अपना ही समभिन्न (कसर वाजिन) नहीं, किन्तु अपना ही विषम भिन्न (कसर नावजिन) बना डालती है। दूसरे शब्दों में कामना आपको अपने आपका एक तुच्छ भाग बना देती है और ज्यों-ज्यों कामनायें बढ़ती जाती हैं, त्यों-त्यों आप तुच्छ होते जाते हैं, जैसे किसी अंक के नीचे 'हर' में कुछ न रहने से वह पूर्ण होता है, उसी प्रकार आप पूर्ण हैं किन्तु ज्यों-ज्यों हर में वृद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों वह पूर्णांक छोटा एवं तुच्छ होता जाता है। ज्योंही आप इन अभिलाषाओं, लगनों, स्नेहों द्वेषों, आसक्तियों और अनुरागों को दूर हटादें, प्रकाश पाने की इच्छा को भी बिताड़ित करदें, अपने आप को राग-द्वेष से छुड़ाकर अचल स्थिरता प्राप्त करें, और एक क्षण के लिये ॐ की रट लगावें, जब आप के मन की कोई भी वृत्ति किसी भी व्यक्ति किसी भी देह या किसी भी पदार्थ में न रह जाये, जब आपका

वह कामना भाग, जो आप विभिन्न पदार्थों और इच्छा के पास छोड़ चुके हैं, बिलकुल लोप हो जाय। त्योंही आप शान्त होकर बैठें, ॐ रटें और विचारें कि आप के अन्दर कौन है ? क्या वह आपका अपना आप नहीं है, जो आपके बालों को बढ़ाता है ? और आप की नाड़ियों में खून बहाता है ? क्या वह आपका अपना आत्मा नहीं है, जिसने इस शरीरको रचा है ? यह विचित्र दुनियाँ भी क्या आप ही के हाथ की कारीगरी नहीं है। निस्सन्देह, यह आप की अपनी ही सृष्टि है। यह समझ लो, यह खूब हृदयंगम कर लो। आपके द्वारा सुनने वाला कौन है ? क्या आप खुद ही नहीं हैं ? वह कौन है जो आप के द्वारा देखता है। क्या आप खुद ही नहीं हैं ? आपकी नाड़ियों में खून दौड़ाने वाला कौन है ? क्या आप स्वयं नहीं हैं ? यदि आपका वह अपना आप आत्मा ऐसे अपूर्व काम कर सकता है, तो क्या यह दुनियाँ भी आप ही की रचना नहीं है। ऐसा समझो और अपने आत्मदेव में आनन्द मनाओ और अपने भीतर से उस आनन्द को प्राप्त करो, अपने निजात्मा ही का सुख लूटो। सर्व साधारण और असाधारण कामनाओं और अभिलाषाओं को दूर फेंक दो। ॐ ॐ रटो, यदि कुछ पल भी आप ऐसा करें तो सिर से पैर तक आपकी सारी

हस्ती ज्योतिर्मय हो जाय, जब आप खुद ही प्रकाश हैं तो प्रकाश के लिये प्रार्थना क्यों? आप तुरन्त प्रकाश हो सकते हैं। अपनेको पूर्ण बनाइये, कामनाओं और अनुरागों से छुटकारा पाइये, इस राग-द्वेष से पीछा छुड़ाइये। आसक्ति ही आपको अपने स्वरूप से अलग करती है। जब आप घर पहुँचें तब विचार करें कि किस चीज़ में आपका चित्त लगा हुआ है। यदि आप नामवरी या यश में आसक्त हैं तो उसे दूर कर दीजिये। यदि लोकप्रियता की इच्छा के मोह जालमें आप उलझे हुए हैं तो उससे अपने को विरक्त कर लीजिये। यदि संसारका हित करने की आकाँक्षा, अभिलाषा में भी आपका अनुराग है तो उसे त्याग दीजिये। यह एक ग़ैरमामूली-सी बात मालूम होती है। किन्तु दुनियाँ इतनी दीन-हीन क्यों हो कि वह हर घड़ी आप की सहायता माँगती रहे।

'राम' कहता है कि आप अपना कर्तव्य या काम कीजिये पर उसके लिये न तो कोई चिन्ता हो और न इच्छा। अपने काम को करो, अपने काम में सुख अनुभव करो, क्योंकि आपका काम स्वयं सुख या आराम है, क्योंकि आपका काम आत्मानुभव का ही दूसरा नाम है। अपने काम में लगे रहिये, क्योंकि

काम आपको करना ही है। काम आपको आत्मानुभव कराता है। किसी दूसरे हेतु से काम न कीजिये। स्वतन्त्र वृत्ति से अपने काम पर आइये—जैसे एक राजकुमार मनोरंजनके लिये फुटबाल या दूसरा कोई खेल खेलने जाता है, वैसे आप अपने काम पर आइये, क्योंकि सुख या आनन्द कर्म के रूप में रहता है। हम अपने को स्वतन्त्र समझें, न कि किसी प्रकार से भी परतन्त्र।

लोग कहते हैं–'कर्तव्य' 'कर्तव्य' किन्तु 'कर्तव्य' तुम्हारा स्वामी क्यों बने ? किसी के प्रति भी अपने को उत्तरदायी मत समझो। आप स्वयं अपने प्रभु हैं। किसी डर को अपने पास मत फटकने दो। हम कहते हैं कि तुम्हें काम करना होगा, किन्तु यदि आप कोई दूसरा काम कर रहे हैं, जिसे आपने धार्मिक मान लिया है, जिसे आपने पवित्र और पुण्य कर्म बना लिया है, और आप उसमें लगे हुए हैं, तो बहुत अच्छा है। जब तुम्हारे हाथ किसी काम में नियुक्त नहीं हैं जब तुम्हारे हाथ खाली हैं, और तुम अपने कमरे में बैठे हुए हो तब अपने प्रभुत्व का आनन्द लूटो, अपने आत्मानन्द का स्वाद चखो। वह सर्वश्रेष्ठ काम है, वहाँ अपने कमरे में, अपने हृदय के सब अनुरागों को

दूर कर दो। लोग कहते हैं–"मोह या अनुराग ज़रूरी है, हमसे काम करानेके लिये हेतुओंका होना आवश्यक है।" यह एक मिथ्या कल्पना है। सब मोहों और आसक्तियों को त्याग दीजिये, अपने को सब कामनाओं से मुक्त कर लीजिये, तुरन्त ही आप अपने को स्वाधीन पावेंगे। तुरन्त ही आप अपने कंधोंपर कोई ज़िम्मेदारी या भार लदा न देखेंगे। आपके कंधों पर जो बोझ है, उन्हें आपने स्वयं लादा है। आपके बोझ को उतरवाने के लिये किसी के भी आने की ज़रूरत नहीं है। जब आप अपने कंधों पर कोई भार नहीं पाते हैं, जब आप अपने प्रिय पदार्थों को अपने आप ही में पाते हैं, जब आप इस वेदान्त के तत्त्व को बर्ताव में लाते हैं, तब अपने आप आपका सारा अस्तित्त्व प्रकाश रूप हो जाता है। स्वयं प्रकाशों के प्रकाश होते हुए किस से आप को प्रकाश के लिये प्रार्थना करनी होगी? किसी से नहीं, यही रहस्य है। तुम स्वाधीन हो जाओ। तुमको कौन बाँधता है? तुम्हें गुलाम बनाने वाला कौन है? तुम्हारी अपनी कामनायें, दूसरा कोई नहीं। संसार की समस्त आकर्षक शक्ति के, संसार की सकल शक्तियों के स्रोत तुम ही हो। दुनियाँ के अपूर्व से अपूर्व चमत्कार तुम्हारे अधमाधम

गुलामों से अधिक नहीं। इन वासनाओं से पिंड छुड़ा लो, इसी दम तुम स्वाधीन हो जाओगे और जब सब कामनाओं से तुम छूट जाओगे, तब कौन-सा परमानन्द ऐसा है, जो तुम्हें प्राप्त न होगा ? कोई जिम्मेवारी नहीं, कोई भय नहीं। अच्छा तुम्हें डर क्यों होता है ? केवल इसलिये कि तुम्हें आशंका रहती है कि कहीं अमुक चीज़ जाती न रहे। तुम इस मनुष्य से डरते हो, उस मनुष्य से डरते हो, तुम्हें हँसी का डर है, क्योंकि तुम्हें यश की अभिलाषा है, तुम कीर्ति में आसक्त हो। समस्त भय और चिन्ता इच्छाओं के नतीजे हैं। राष्ट्रपति या सम्राट् के सामने तुम साष्टांग प्रणाम करते और दबक जाते हो, क्यों ? केवल इसीलिये कि तुम्हें उनकी कृपा-दृष्टि की चाह है। इच्छाओं से मुक्त होने पर, एक-एक करके इन इच्छाओं को दूर कर देने पर तुम प्रभुओं के प्रभु और बादशाहों के बादशाह हो जाते हो। उस समय तुम कितने स्वाधीन और स्वतन्त्र होते हो ! इसलिये 'राम' कहता है कि सत्य का मार्ग कोई ऐसी चीज़ नहीं है, जिसे तुम्हें पाना या पूरा करना है। तुम्हें अपने उद्योगों और प्रयत्नों से केवल उस बन्धन और गुलामी को काटना है, जिस की रचना तुमने अपनी ही इच्छाओं के द्वारा पहले कर रक्खी है।

सांसारिक सुख तो पोस्त के फूलों के समान हैं,
जोकि हाथ में आते ही बिखर जाते हैं।
या नदी पर बरफ़ गिरने के तुल्य हैं,
जिसकी सफ़ेदी क्षणभर रहकर,
सदा के लिये लुप्त हो जाती है।
या उदीची तेजस के समान है,
जिसका वेग दृष्टि की चपलताको भी पछाड़ देता है।
या इन्द्र धनुष्य के मनोहर रूप के तुल्य हैं,
जो तूफ़ान के आते ही विलीन हो जाते हैं।



❋ स्वामी रामतीर्थ उपदेश ❋

(१)

जो दर्शन-शास्त्र प्रकृतिके सभी तथ्योंका समाधान नहीं करता, वह दर्शन-शास्त्र ही नहीं है।

(२)

सत्य क्या है ? 'तत्त्वमसि' अथवा स्वयम् प्रेम।

(३)

सत्यको किसी से समझौता करने की आवश्यकता नहीं। सारा संसार सूर्यके चारों ओर परिक्रमा किया करे, परन्तु सूर्य को संसार के चारों ओर परिक्रमा करने की आवश्यकता नहीं।

(४)

सत्य किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं है; सत्य ईसा की जागीर नहीं है; हमें ईसा के नाम से सत्य का प्रचार नहीं करना चाहिये। सत्य कृष्ण अथवा किसी दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं है। वह तो प्रत्येक व्यक्ति की सम्पत्ति है।

(५)

सत्य तो वह है जो तीनों कालों में एक समान

रहता है, जैसा कल था, वैसा ही आज है और वैसा ही सदा आगे रहेगा। किसी घटना-विशेष से उसका सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता।

(६)

सत्य का अनुभव करना विश्व का स्वामी हो जाना है।

(७)

आप सत्य को प्राप्त कर सकें, आप ब्रह्मत्व का अनुभव कर सकें, इसके लिए यह ज़रूरी है कि आप की प्यारी-से-प्यारी अभिलाषायें और आवश्यकतायें पूर्णतः छिन्न-भिन्न कर दी जायें, आप की ज़रूरतें और प्यारी से प्यारी ममतायें, आसक्तियाँ आप से पृथक् कर दी जायें और आपके चिरपरिचित अन्ध विश्वास मटियामेट कर दिये जायें। इससे आपका, आपके शरीर का कोई सम्बन्ध न रहे।

(८)

यदि सत्यके लिये आपको अपना शरीर त्यागना पड़े, तो त्याग दीजिये। यही अन्तिम ममता है जिसे हमें तोड़ना होगा।

(९)

सत्य या नारायण आपको अपना पिता भान हो,

यही स्वरूप आपको अपनी माता भान हो; यही सत्य या नारायण आप को अपनी स्त्री प्रतीत हो, यही सत्य आप को अपना पितामह, अपना गुरु, अपना घर, अपनी सम्पत्ति, अपना सर्वस्व भान हो।

(१०)

सत्य का सच्चा भाव सारे संसार, समस्त ब्रह्माण्ड के समक्ष व्यक्ति की प्रधानता स्थापित करने से आता है।

(११)

मृत्यु के पश्चात् नरक में जाना अथवा स्वर्ग में प्रवेश करना पूरा सत्य नहीं है।

(१२)

'पूर्ण' मनुष्य हमें कितनी कठिनाई से मिलता है। पूर्ण मनुष्य कौन है? जो अनुभवी है, जो सत्य है। अपने को पूर्ण बनाओ, कामनाओं और मोह के बन्धनों से ऊपर उठाओ। राग और द्वेष से परे हो जाओ।

(१३)

असल में केवल एक ही आत्मा है, जो हम हैं, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। और इस आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी न होने के कारण आप

युक्तिपूर्वक यह नहीं कह सकते कि आप एक अंश हैं। वरन् इससे यह अनिवार्यतः सिद्ध होता है कि आप ही वह सम्पूर्ण आत्मा हैं। सत्यके खण्ड नहीं हो सकते। आप अभी पूर्ण सत्य हैं।

(१४)

लोग तथा अन्य वस्तुयें तभी तक हमें प्यारी लगती हैं, जब तक वे हमारा स्वार्थ सिद्ध करती हैं; हमारा काम निकालती हैं। जिस क्षण हमारे स्वार्थ के सिद्ध होने में गड़बड़ होती है, उसी क्षण हम सब कुछ त्याग देते हैं।

(१५)

बच्चे के लिए बच्चा प्यारा नहीं होता, किन्तु अपने लिये बच्चा प्यारा होता है। पत्नी के लिए पत्नी प्यारी नहीं होती, किन्तु अपने लिए पत्नी प्यारी होती है। ऐसे ही पतिके लिये पति प्यारा नहीं होता वरन् अपने लिये पति प्यारा होता है। यही सत्य है।

(१६)

यद्यपि हमारी बुद्धि मृत्यु स्वीकार करती है, तो भी उसमें हमको असली विश्वास क्यों नहीं होता? इसका समाधान वेदान्त इस प्रकार करता है—मनुष्य के भीतर एक असली आत्मा है, जो अमर है; एक

असली अविनाशी, अपरिवर्तनशील आत्मा है। कल, आज और सदा वह एक समान है। मनुष्य में कोई ऐसी वस्तु है, जिसको मृत्यु नहीं आती, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

(१७)

अपने को पुरुष अथवा स्त्री कहना, अपने को क्षुद्र, दीन-हीन जीव बतलाना असत्य और नास्तिकता है।

(१८)

ब्रह्म वह है, जो न मन से जाना जाता है और न चक्षु आदि इन्द्रियों से। परन्तु जो मन-चक्षु आदि को अपने-अपने काम में लगाता है।

(१९)

ऐ चंचल चित्त नास्तिक ! तू क्यों चिड़चिड़ाता और दुःखी होता है ? सिवाय तेरी अपनी मधुरात्मा (दैवी विधान)के संसार पर अन्य किसी का आधिपत्य नहीं है।

(२०)

तुम कौन हो ? अनन्त, निष्कलंक, अमर सर्वात्मा ही तो तुम हो।

(२१)

क्या तुम्हें अपने ब्रह्मत्व के विषय में कोई सन्देह

है ? अपने हृदयमें ऐसा सन्देह रखने की अपेक्षा गोली मार लेना कहीं श्रेष्ठ है ।

(२२)

ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, नामरूपात्मक जगत् मिथ्या है ।

(२३)

शरीर केवल छायामात्र है; वास्तविक आत्मा ही परम सत्य है ।

(२४)

असली मनुष्य, सच्चा मनुष्य ब्रह्म या परमात्मा है; ब्रह्म के अतिरिक्त वह और कुछ नहीं ।

(२५)

असली आत्मा, सत्य नारायण वाणी और मन की पहुँच से परे है ।

(२६)

ब्रह्म संवेदन या विचार का विषय नहीं हो सकता । मन और वाणी उससे अकुलाकर लौट आते हैं ।

(२७)

आप में एक ऐसी वस्तु है जो सुषुप्ति काल में भी जागती रहती है, वही आप की वास्तविक आत्मा, परम शक्ति अथवा परम ज्ञान है ।

(२८)

लोग पूछते हैं—क्या आप ईश्वर का एक अंश हैं? नहीं, नहीं, ब्रह्मके खण्ड नहीं हो सकते; ईश्वर तोड़ा-फोड़ा नहीं जा सकता। तुम ईश्वर के अंश नहीं हो। यदि ईश्वर अनन्त है, तो तुम अवश्य ही पूर्ण ईश्वर हो, तुम ईश्वर के अंशमात्र नहीं हो सकते।

(२९)

प्र०—क्या आप ईश्वर में विश्वास करते हैं?

उ०—मैं ईश्वर को जानता हूँ। हम विश्वास तो उस चीज़ में करते हैं जिसको हम जानते नहीं, और जो हम पर बलात् मढ़ी जाती है। ईश्वर में विश्वास करना, इसका क्या अर्थ है? आप उसके विषय में क्या जानते हैं? मैं ईश्वर को जानता हूँ! मैं वही हूँ; मैं स्वयं वही ईश्वर हूँ।

(३०)

जहाँ तुम अपने से भिन्न न किसी को देखते हो, न सुनते हो और न जानते हो, वही अनन्त है, क्योंकि जब तक तुम्हारे अतिरिक्त कोई और वस्तु विद्यमान है, तब तक तुम परिच्छिन्न और अन्तवान् हो।

(३१)

अनन्त ही परमानन्द है। किसी अन्तवान् में

परमानन्द नहीं होता। जब तक आप अन्तवान् हैं, तब तक आपको परमानन्द, परम सुख नहीं मिल सकता। अनन्त ही परमानन्द है, केवल अनन्त ही परमानन्द है।

(३२)

जो कोई आपके पास आवे, ईश्वर समझ कर उस का स्वागत करो, परन्तु साथ ही साथ अपने को भी अधम मत समझो। यदि आज आप बंदीखाने में पड़े हैं, तो कल आप प्रतापवान् भी हो सकते हैं।

(३३)

आप ही के भीतर सच्चा आनन्द है। आप ही के भीतर दिव्यामृत का महासागर है। इसे अपने भीतर ढूँढ़िये, अनुभव कीजिये, भान कीजिये कि यह भीतर ही है, आत्मा। यह न तन है, न मन है, न बुद्धि है, न मस्तिष्क है, न इच्छा है, न इच्छा-प्रवृत्ति और न इच्छित पदार्थ; आत्मा इन सब से ऊपर है। ये सब प्रादुर्भावमात्र, नाम-रूप हैं। आपका आत्मा ही मुस्कराते हुए फूलों और चमचमाते हुए तारों के रूप में प्रकट होता है। इस संसार में ऐसी कौन चीज़ है, जो आत्मा में किसी अभिलाषा को उत्पन्न कर सके।

(३४)

ज्योंही आप इन बाह्य पदार्थों की ओर प्रेरित

होकर उनको पकड़ना और अपनाना चाहते हैं, उसी क्षण वे आपको छलकर आपके हाथ से निकल भागते हैं। किन्तु जिस क्षण आप इनकी ओर पीठ फेरोगे और प्रकाशों के प्रकाश-स्वरूप अपनी निजात्मा की ओर मुख करोगे, उसी क्षण परम कल्याणकारक अवस्थायें आप की खोज में लग जायेंगी—यही दैवी विधान है।

(३५)

जब कभी मनुष्य किसी साँसारिक वस्तु से दिल लगाता है। जब कभी मनुष्य किसी पदार्थ के साथ उसी के लिए प्रेम करने लगता है, जब कभी मनुष्य उस पदार्थ में सुख ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है, तभी उसको धोखा हो जाता है, इन्द्रियाँ उसे उल्लू बना देती हैं। आप साँसारिक पदार्थों में आसक्ति रखके सुख नहीं पा सकते। यही दैवी विधान है।

(३६)

शक्तिशाली मुद्रा में विश्वास मत करो, ईश्वर पर भरोसा रखो। इस पदार्थ पर अथवा उस पदार्थ पर भरोसा न करो। अपने स्वरूप, अपनी आत्मा में विश्वास करो।

(३७)

अहंकारी मत बनो, घमण्डी मत बनो। यह कभी

मत समझो कि आप की परिच्छिन्न आत्मा किसी वस्तु की स्वामी है, सब कुछ आपका असली आत्मा, ईश्वर की देन है।

(३८)

शरीर से ऊपर उठो। समझो और अनुभव करो कि मैं अनन्त हूँ, परम आत्मा हूँ, और इसलिये मुझ पर मनोविकार और लोभ भला कैसे प्रभाव डाल सकते हैं।

(३९)

आप अपने ब्रह्मत्व में निवास कीजिये, फिर आप स्वतन्त्र हैं, स्वयं अपने स्वामी और सारे विश्व के शासक हैं।

(४०)

जिस समय मनुष्य विश्व आत्मा को अपना निजी आत्मा अनुभव करता है, उस समय सारा विश्व शरीर की भाँति उस की सेवा करने लगता है।

(४१)

भूख-प्यास शरीर के धर्म हैं, और मन से भान होते हैं, सच्ची आत्मा को न दुःख होता है और न घबराहट होती है। जो अपने परमात्मरूप परम भाव को अनुभव करता है, उसे शारीरिक थकान,

भूख-प्यास से न दुःख होता है और न घबराहट ही होती है ।

(४२)

अपने चित्त को शान्त रखो, अपने मन को शुद्ध विचारों से भर दो । तब कोई भी आपके विरुद्ध खड़ा नहीं हो सकता । ऐसी दैवी विधान है ।

(४३)

दैवी विधान यह है कि मनुष्य मन से आराम में, शान्ति में एवं क्षोभ-रहित अवस्था में रहे और तन से सदा काम में लगा रहे । मन को जड़-विज्ञान के नियमोंके अधीन रखा करे और तनको गतिविज्ञान के नियमों के अधीन अर्थात् तन काम में और भीतरी आत्मा सदा आराम में रहे, यही दैवी विधान है । मुक्त हो !

(४४)

यह वेधने-योग्य क्षुद्र 'मैंपन' जो हममें और दूसरों में पाप का उद्रेक करता है, उसे हमें उतार फेंकना चाहिए ।

(४५)

निष्पापवस्था वास्तव में आत्मा-परमात्मा की है, परन्तु व्यवहार में भ्रमवश यह शरीर का गुण

मानी जाती है ।

(४६)

ऐसे शब्द लोगोंको फुफकारते हुए सर्प की फुँकार के समान लगते हैं, जैसे तुम स्वयं ईश्वर हो, पवित्रों में पवित्रतम हो । संसार वास्तव में कुछ नहीं है । तुम ही सब में सब कुछ, परम शक्ति हो, वह शक्ति जिसका शब्द, मन और बुद्धि निरूपण नहीं कर सकते; तुम शुद्ध 'मैं हूँ, सोऽहं' हो । यथार्थमें तुम वही हो, तत्त्वमसि ।

(४७)

मैं कब स्वतन्त्र हूँगा ?

जब परिच्छिन्न 'मैं' का लोप हो जायेगा ।

(४८)

ईश्वर क्या है ? ईश्वर एक रहस्य है ।

(४९)

वह कौन है जो आप के सम्मुख है, वह कौन है जो सीधा आप की ओर देखता है, जब आप किसी मनुष्य की ओर निगाह उठाते हैं ? वही अन्तरवाला परमात्मा है ।

(५०)

अनन्त, अव्यक्त, असीम शक्ति जो किसी परिच्छिन्न रूप अथवा आकार में गुप्त रहती है, जो

बीज शब्दका वास्तविक अर्थ है, वही हृदयस्थ अनन्त है, न कि उसका ऊपरी या बाहरी रूप। यह बाह्य रूप अनन्त नहीं।

(५१)

आदि बीज के लाख पुश्त के वंशज में भी वही अनन्त सामर्थ्य और अव्यक्तत्व है, जो आदि बीज में था।

(५२)

अनन्त भीतर है। अनन्त, अनन्त सामर्थ्य या शक्ति अपरिवर्तनशील है। अनन्त कैसे नाश हो सकता है उसका नाश कभी नहीं होता, कभी नहीं होता।

(५३)

अज्ञानवश तुम अपने को शरीर कहते हो परन्तु शरीर तुम हो नहीं। तुम अनन्त शक्ति हो, ईश्वर हो, नित्य और निर्विकार हो। तुम वही हो, उसे जानो और तुम फिर अपने को सारे संसार में और समस्त विश्व में ओत-प्रोत पाओगे।

(५४)

एक अनन्त राम ही इन सब शरीरों में प्रतिबिम्बित है; अज्ञानी लोग इस संसार में कुत्ते की भांति आते हैं। कृपया अपना रुख बदलो। संसार में

घर के, दर्पण के और शीशभवन के स्वामी की भाँति प्रवेश करो। इस संसार में कुत्ते की भाँति नहीं, वरन् ईश्वर की भाँति विचरो, और आप स्वयं शीशभवन के स्वामी, सारे विश्व के मालिक हो जाओगे।

(५५)

मनुष्य का असली स्वरूप ईश्वर है। यदि ईश्वर मनुष्य का निजी आत्मा न होता, तो इस संसार में किसी पैगम्बर अथवा सन्त का आना कैसे सम्भव होता ?

(५६)

सारा संसार स्वर्ग है, और ईश्वर कभी धोखे में नहीं आयेगा।

(५७)

"अहं ब्रह्मास्मि" न कहना पाप है।

(५८)

वेदान्त के अनुसार स्वतःसिद्ध सत्य यह है कि कि तुम पहले ही से ईश्वर हो, ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो; तुम्हें अपने ईश्वरत्व को बनाना नहीं है, उसे केवल जानना, अनुभव करना या भान करना है।

(५९)

वेदान्त आपसे यह सत्य अंगीकार कराना चाहता

है कि सुख मात्र देने में है, लेने अथवा भीख मांगने में नहीं।

(६०)

वेदान्त के अनुसार किसी व्यक्तिगत सम्पत्ति पर अधिकार जमाना, आन्तरिक या निजस्वरूप आत्मा के विरुद्ध घोर पातक है।

(६१)

व्यवहारिक अथवा अमली वेदान्त क्या है ?

साहसपूर्ण आगे बढ़ने वाला परिश्रम, न कि जकड़ देने वाला आलस्य;

काममें आराम, न कि थकानेवाली बेगार वृत्ति;

चित्त की शान्ति, न कि संशय रूपी घुन;

संगठन, न कि विघटन;

समुचित सुधार, न कि लकीर के फकीर;

गम्भीर और सत्य भावना; न कि लच्छेदार बातें;

तथ्य और सत्यभरी कविता न कि कपोल-कल्पित कहानियाँ;

घटनाओं के आधार पर तर्क, न कि प्राचीन लेखकों के प्रमाण;

जीता-जागता अनुभव, न कि जीवनशून्य वचन;
यही सब मिलकर व्यावहारिक वेदान्त बनता है।

(६२)

पुस्तकों में छपे हुए और कीड़ोंके आहार के लिए अलमारियों में रखे हुए वेदान्त से काम न चलेगा, तुम्हें इसे आचरण में लाना होगा।

(६३)

यदि वेदान्त आप की ठंड को दूर नहीं करता, यदि वह आपको प्रसन्न नहीं करता, यदि वह आपके बोझ को नहीं उतारता, तो उसे ठुकरा कर अलग फेंक दो।

(६४)

वेदान्त के अनुसार करुणामात्रका भाव निर्बलता है।

(६५)

वेदान्त साधारण लोगों को इसलिए अपनी ओर खींचता है कि वह उनके धर्म-ग्रन्थ वेद की शिक्षा है; शिक्षित हिन्दू को वह इसलिये आकर्षित करता है कि सूर्य के तले दर्शन-शास्त्र कहलाने योग्य कोई भी ऐसा दर्शन नहीं है जो वेदान्तिक अद्वैतवाद का समर्थन न करता हो और न ऐसा कोई विज्ञान ही है जो वेदान्त अथवा सत्य के पक्ष का समर्थन एवं प्रसार न करता हो।

(६६)

वेदान्त-दर्शन के प्रचार का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है इसे अपने आचरण में लाना। अन्य कोई भी सुगममार्ग नहीं है।

(६७)

जिस समय आप अपने को एक ऐसी विचित्र, अकथनीय भावना में पहुँचा देते हैं कि जो मैं और तू (दृष्टा और दृश्य) दोनों से ऊँची है, उसी समय आप वास्तव में मुझे, ब्रह्म को पाते हैं। वेदान्त आपको यही रहस्य बतलाता है।

(६८)

यदि आप किसी अर्थ या ईश्वर की उपलब्धि चाहते हैं, यदि आप किसी भी पदार्थ को पाना चाहते हैं, तो परछाईं के पीछे मत दौड़ो। अपने ही सिर छुओ, अपने भीतर प्रवेश करो। इस तथ्य का अनुभव करो, और आप देखेंगे कि तारागण आप की ही दस्तकारी हैं, आप देखेंगे कि समस्त प्रिय पदार्थ, सारी मोहने और लुभाने वाली चीजें, केवल आपका अपना ही प्रतिबिम्ब, परछाईं हैं।

(६९)

स्वर्ग आपके भीतर है; स्वर्ग अर्थात् आनन्द का

भण्डार आपके भीतर है; और तब भी आप सुखको विषयों में गली-गली में ढूँढ़ते फिरते हैं, उस वस्तु को अपने बाहर इन्द्रियों के विषयों में ढूँढ़ते हैं, कैसा आश्चर्य है !

(७०)

तुम एक ही साथ इन्द्रियों के दास और विश्व के स्वामी नहीं बन सकते। (७१)

चाहे संसारभर के सारे बड़े-बड़े उपदेशक आ जायें; ईसा अथवा स्वयं ईश्वर आकर उपदेश करे, परन्तु जबतक आप स्वयं अपने को उपदेश देने के लिये तत्पर नहीं होंगे, तबतक दूसरों के उपदेशों से रंचकमात्र भी लाभ न होगा।

(७२)

वेदान्त चाहता है कि आप कर्म-प्रवृत्ति की तीव्र लगन के द्वारा परिच्छिन्न आत्मा अर्थात् क्षुद्र अहंकार से ऊपर उठें।

(७३)

वेदान्त चाहता है कि आप काम को केवल काम की खातिर करें।

(७४)

वेदान्त में 'कर्म' का अर्थ है अपनी असली आत्मा

से मेल और विश्व से अभिन्नता।

(७५)

कर्म क्या है ?

वेदान्त के अनुसार नितान्त कर्म ही विश्राम है।

सभी सच्चा काम आराम है।

(७६)

शरीर को तो कर्मशील उद्योग में निरत रखने से और मन को शान्ति और प्रेम में तल्लीन रखने से यहीं इसी जन्म में पाप और ताप से मुक्ति मिल जाती है।

(७७)

अन्तर-आत्मा शान्त रहे और शरीर निरन्तर काम में लगा रहे, अर्थात् शरीर गतिविज्ञानके नियमों के अधीन कर्म में प्रवृत्त रहे और अन्तर-आत्मा सदा जड़विज्ञान के अनुसार स्थिर रहे।

(७८)

आपका काम व्यक्तित्वशून्य, कर्तत्वभाव से रहित हो, आपके कामों में स्वार्थपूर्ण अहंकार की गन्ध तक न होनी चाहिये, आपका काम सूर्य और तारागणों के काम के समान हो; आपका काम चन्द्रमा के काम के सदृश हो। केवल तभी आपका काम सफलीभूत

हो सकता है ।

(७९)

शरीर और मन को निरन्तर काम में इस हद तक प्रवृत्त रखो कि परिश्रम बिल्कुल जान ही न पड़े ।

(८०)

अपने इस क्षुद्र अहंकार को त्याग दो, काम के करने में इसे भुला दो, और तब सफलता अवश्यमेव आपको मिलेगी; अन्यथा नहीं । काम में सफलता पाने से पहले सफलता की आकांक्षा का नष्ट होना आवश्यक है ।

(८१)

निर्लिप्त साक्षी के रूप में सब झंझटों से मुक्त होकर कर्म करो । सदा स्वतन्त्र और निर्लिप्त रहो ।

(८२)

जहाँ कहीं रहो, दानी की हैसियत से काम करो, भिक्षुक की हैसियतसे कदापि ग्रहण मत करो, जिससे आपका काम विश्वव्यापी काम हो, उसमें व्यक्तित्व की गन्ध भी न रहे ।

(८३)

संसारी मनुष्य के लिए निरन्तर कर्म, और

निरन्तर परिश्रम ही सब से महान् योग है। जब आप अपनी दृष्टि में काम नहीं करते, तभी संसार के लिए आप सबसे महान् कार्यकर्ता बन जाते हैं।

(८४)

सफलता प्राप्त करने के लिए, समृद्धिशाली होने के लिये आपको अपने काम से, अपने जीवन के दैनिक व्यवहार से, अपने शरीर और पुट्ठों को कर्मयोग की प्रयोगाग्नि में भस्म कर देना होगा, दहन कर देना होगा। आपको अवश्य ही उनका प्रयोग करना होगा, आपको अपना शरीर और मन खर्च करना पड़ेगा, उन्हें जलती हुई अवस्था में रखना पड़ेगा। अपने शरीर और मन को कर्म की सलीब पर चढ़ाओ; कर्म करो, कर्म करो; और तभी आप के भीतर से प्रकाश प्रदीप्त होगा।

(८५)

वेदान्त चाहता है कि आप अपनी अन्तरात्मा में विश्राम करें।

(८६)

ऐ भाग्यवान् कर्मयोगी ! ज्योंही तुम सफलता को ढूँढ़ना छोड़ दोगे, त्योंही सफलता तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ी आयेगी।

(८७)

हमारी स्वार्थ-पूर्ण चंचलता ही सारे काम बिगाड़ देती है।

(८८)

यदि आप अधिकारी हैं, तो आपको इच्छा करने की आवश्यकता नहीं; आप के इच्छित पदार्थ आपके पास स्वतः लाये जायेंगे, स्वतः चले आयेंगे; यदि आप अपने को योग्य बना लेते हैं, तो आप को सहायता अवश्य मिलेगी।

(८९)

ज्योंही आप इच्छा से ऊपर उठते हो, त्योंही आपका इच्छित पदार्थ आपको ढूँढ़ने लग जाता है; अतः पदार्थ से ऊपर उठो, और वह तुम्हें ढूँढेगा—यही नियम है। ज्योंही आप प्रार्थी, इच्छुक, याचक, अथवा भिक्षुक का भाव धारण करते हैं, त्योंहीं आप परे धकेले जाते हैं, आपको इच्छित पदार्थ नहीं मिलेगा, आप इच्छित पदार्थ नहीं पा सकते।

(९०)

अपने भीतर के स्वर्ग को अनुभव करो, और एक साथ सारी कामनायें पूर्ण हो जायेंगी। दुःख और व्यथा का अन्त हो जायेगा।

(९१)

शब्दों की अपेक्षा कर्म अधिक जोर से बोलते हैं।

(९२)

आपका काम केवल काम की खातिर हो, यही निष्काम कर्म है।

(९३)

इच्छाओं का त्याग कर दो, उनसे ऊपर उठो, आपको द्विगुण शान्ति मिलेगी—तात्कालिक विश्रान्ति और अन्त में इच्छित फल। स्मरण रखो कि आप की कामनायें तभी सिद्ध होंगी, जब आप उनसे ऊपर उठकर परम सत्य में पहुँचोगे। जब आप जानकर या अनजाने अपने आपको ब्रह्मत्व में लीन कर देते हैं, तभी और केवल तभी आप की कामनाओं के पूर्ण होने का काल सिद्ध होता है।

(९४)

आपका कर्म सफल हो, इसके लिये आपको उस के परिणाम पर ध्यान नहीं देना चाहिये, आपको उस के फल की परवाह नहीं करनी चाहिये। साधन और उद्देश्य को मिलाकर एक कर दो, काम ही आपका उद्देश्य या लक्ष्य बन जाये।

(९५)

बस, परिणाम और फल की परवाह मत करो। सफलता अथवा असफलता मेरे लिये कुछ भी नहीं, मुझे काम जरूर करना होगा, क्योंकि मुझे काम प्यारा लगता है, मुझे काम केवल काम के लिये ही करना चाहिये। काम करना मेरा उद्देश्य है; कर्म में प्रवृत्त रहना ही मेरा जीवन है। मेरा स्वरूप, मेरी असली आत्मा स्वयं शक्ति है। अतः मुझे काम करना ही होगा।

(९६)

परिणाम के लिये चिन्ता मत करो, लोगों से कुछ भी आशा न रखो; अपने काम पर अनुकूल अथवा प्रतिकूल आलोचना के विषय में व्याकुल मत हो।

(९७)

सदा कार्य-कर्ता और दाता बनो; अपने चित्तको कदापि याचक और आकांक्षी की दशा में न डालो। अपने व्यक्तिगत, अधिकार जमाने वाले स्वभाव से पल्ला छुड़ाओ।

(९८)

जब आप इच्छाओं को छोड़ देते हैं, तभी, केवल

तभी, वे सफल होती हैं। जब तक आप अपनी अभिलाषा रूपी धनुष-डोरी को खिंची रखेंगे, अर्थात् इच्छा, आकांक्षा और अभिलाषा करना ही जारी रखेंगे, तब तक तीर दूसरे पक्ष के वक्षस्थल तक कैसे पहुँचेगा ? ज्योंही आप उसे छोड़ देते हैं, त्योंही वह सम्बन्धित प्रतिपक्षी के हृदय को भेद देता है।

(९९)

भाग्य का दूसरा नाम विचार है।

(१००)

संसार और आपका वातावरण ठीक उसी प्रकार का बनता है, जैसा उसके विषय में आप सोचते रहते हैं।

(१०१)

जैसा आप सोचते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। अपने आपको पापी कहो, तो अवश्य ही पापी बन जाओगे; अपने को मूर्ख कहो, तो अवश्य ही आप मूर्ख हो जाओगे; अपने को निर्बल कहो, तो इस संसारमें कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो आपको बलवान् बना सके। अपने सर्वशक्तित्व को अनुभव करो, तो आप सर्वशक्तिमान् हो जाते हैं।

(१०२)

किसी व्यक्ति की भावना बदल दो, उसके सोचने-विचारने का ढंग ही लोट-पोट हो जायेगा।

(१०३)

जिस प्रकार गरुड़ उड़कर उस वायुमण्डल के बाहर नहीं जा सकता जिसमें वह उड़ता रहता है, उसी प्रकार विचार अपने सीमा-मण्डल से आगे नहीं बढ़ सकते।

(१०४)

विचार और भाषा एक ही चीज है। बिना भाषा के आप विचार नहीं कर सकते। नादान बच्चे को भाषा का ज्ञान नहीं होता, इसी कारण उसका कोई विचार भी नहीं होता।

(१०५)

जो व्यक्ति कल्पनाओं में निवास करता है, वह भ्रम और आधि-व्याधि के संसार में निवास करता है, और चाहे वह बुद्धिमान् और पण्डित ही क्यों न जान पड़े, परन्तु उस की बुद्धिमत्ता और पाण्डित्य उस लकड़ी के लट्ठे के समान खोखली है जिसे दीमक ने खा लिया हो।

(१०६)

सच्ची विद्या उस समय आरम्भ होती है, जब

मनुष्य समस्त बाहरी सहारों को छोड़कर अपनी अन्तरंग अनन्तता की ओर ध्यान देता है। उस समय मानों वह मौलिक ज्ञान का एक स्वाभाविक स्त्रोत बन जाता है अथवा महान् नवीन, नूतन विचारों का चश्मा बन जाता है।

(१०७)

विद्वत्ता दर्शाने के लिये बड़े-बड़े और लम्बे-चौड़े वाक्यों और श्लोकों को उद्धृत करने की योग्यता रखना तथा प्राचीन धर्म-ग्रन्थों के भावों को तोड़ने-मोड़ने के लिये व्यर्थ बाल की खाल निकालने की शक्ति रखना तथा ऐसे विषयों का अध्ययन करना जिनको हमें कभी अपने जीवनमें व्यवहार नहीं करना है, विद्या नहीं है।

(१०८)

सच्ची विद्या का पूर्ण उद्देश्य लोगों से ठीक काम कराना ही नहीं, वरन् ठीक कामों में आनन्द लेना सिखलाना है, केवल परिश्रमी बनाना ही नहीं, वरन् परिश्रम से प्रेम करना सिखलाना है।

(१०९)

यदि विद्या मुझे स्वतन्त्रता की प्राप्ति, मोक्ष की प्राप्ति नहीं करा देती, तो उसे धिक्कार है! उसे दूर

फेंक दो, मुझे उसकी आवश्यकता नहीं। यदि विद्या मुझे बन्धन में रखती है, तो मुझे ऐसी विद्या से कोई प्रयोजन नहीं हो सकता।

(११०)

किसी कल्पना को दक्षता से व्यवहारमें ले आना और बात है, किन्तु उसके असली भाव को पा लेना बिलकुल ही दूसरी बात है।

(१११)

मनुष्य और पशु में बड़ा भेद यह है कि जहाँ पिल्ले में और सुग्गे में उनके उत्कर्ष के लिये वंश-परम्परा के नियमानुसार सब कुछ मौजूद रहता है, वहाँ शिशु केवल शिक्षा और ग्रहणशक्ति द्वारा ही अपने पैत्रिक गुणोंका ऐसा विकास और ऐसा उत्कर्ष कर सकता है कि वह सारे संसार को अपने अधिकार में ले आवे।

(११२)

मनुष्य की भावनायें बुद्धि के अधीन होती हैं, इसलिए मनुष्य पशुओं से श्रेष्ठ माना जाता है।

(११३)

बच्चे को कोई प्रयोजन नहीं होता, फिर भी वह पृथ्वी पर सबसे अधिक क्रियाशील प्राणियों में है।

(११४)

जीवन क्या है? बाधाओं की शृंखला। हाँ, केवल उनके लिये जो जीवन के ऊपरी सितह पर निवास करते हैं, किन्तु उनके लिये नहीं; जो प्रेम-रूपी जीवन व्यतीत करते हैं।

(११५)

इन्द्रियों की उत्पति किससे हुई? तत्वों से। तत्वों की जानकारी किस प्रकार होती है? इन्द्रियों द्वारा। क्या यह तर्क एक चक्र में नहीं है? अतः यह तर्क जागृत अवस्था के संसार के मायिक स्वरूप को सिद्ध करता है।

(११६)

जब तक प्रश्नकर्ता और प्रश्न बने रहेंगे, तबतक माया के कारागार की दीवारें भी बनी रहेंगी और नाम-रूप से ऊपर उठना असम्भव होगा।

(११७)

केवल जागृत अवस्था के अनुभव पर ही यूरोप और अमेरिका के दर्शनशास्त्र अवलम्बित हैं; वे सुषुप्ति तथा स्वप्न अवस्था के अनुभव पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। इसलिये हिन्दुओं का कहना है कि

जब आप अधूरे आधार से आरम्भ करते हैं, तब विश्व की समस्या का आपका हल किस प्रकार ठीक हो सकता है।

(११८)

इस संसारके सारे पदार्थ उन झीलों जैसे मायावी हैं; जो एक सम्मोहित मनुष्य सूखे फर्श पर रच लेता है। ऐसी दशा में उन पदार्थों का ज्ञान जिस पर पाश्चात्य अध्यापक और आचार्य घमंड करते और शेखी बघारते हैं, सम्मोहन विद्या के सिवा और कुछ नहीं है।

(११९)

ऐसे काम जो आपके हृदयके निकट हैं, जो आप के दिल और धन्धे से सम्बन्ध रखते हैं, उन पर ध्यान देना कहीं अधिक उचित है; परलोक अथवा स्वप्न का संसार तो अपनी फिक्र आप कर लेगा।

(१२०)

साँसारिक भोग-विलास की भूमि में बोये हुए बीज से आध्यात्मिक विकास का पौधा नहीं पनप सकता।

(१२१)

आध्यात्मिक शक्तियों में विश्वास करो। जिन

लोगों से आपका समागम हो उनके अनन्त सामर्थ्य में विश्वास रखो। लोगों के विषय में निर्णय करना छोड़ दो। कभी किसी के विषय में अपना विशेष मत स्थिर मत करो; किसी को अपराधी मत ठहराओ।

(१२२)

जिस प्रकार राज-सिंहासन पर राजा के विराजते ही दरबार भर में व्यवस्था स्थापित हो जाती है, उसी प्रकार जब मनुष्य अपने ब्रह्मत्व की निजी महिमा में स्थित होता है तब सारी जातिमें व्यवस्था और स्फूर्ति छा जाती है।

(१२३)

जैसे चिमटा प्रायः और सब चीजों को पकड़ सकता है, परन्तु पीछे लौट कर उन उँगलियों को जो उसको साधे हुए हैं किसी प्रकार नहीं पकड़ सकता, उसी प्रकार मन अथवा बुद्धि से उस महान् अज्ञेय को, जो स्वयं उनका आदि मूल है, जानने की किसी प्रकार आशा नहीं की जा सकती।

(१२४)

वेदों का ज्ञान-काण्ड ही असली वेद है और इसी को हिन्दुओं के षट्-दर्शनचार्योंने, जैन और बुद्ध-धर्म

के विद्वानों ने श्रुति के रूप में मान्यता दी है।

(१२५)

जिस समय हमें किसी शारीरिक निर्बलता का भान होता है, उसी क्षरण हम स्वर्ग से पतित हो जाते हैं। जिस क्षरण हम भेद-भाव के वृक्ष का फल चख लेते हैं; उसी क्षरण हम स्वर्ग से गिरा दिये जाते हैं; किन्तु हम अपने शरीर [विषय-वासना] को सलीब पर चढ़ा कर उस खोये हुए स्वर्ग को फिर से प्राप्त कर सकते हैं।

(१२६)

इसलिये त्याग के भाव को ग्रहरण करो और जो प्राप्त हो, उसे दूसरों पर प्रकाशित करो। स्वार्थ-पूर्ण शोषरण मत करो। ऐसा करने से आप अवश्य ही उज्ज्वल हो जायँगे।

(१२७)

यदि आप कर्मके विधानको यह कहकर समझाते हैं कि वह तोईश्वर की इच्छा है, वह उसी का काम है; तो यह कोई ठीक उत्तर नहीं; यह स्पष्ट रूप से प्रश्नको टालना हैं; और प्रश्नको टालना विचारात्मक नहीं होता, उससे आप की अज्ञानता प्रकट होती है।

(१२८)

ऐसे सब कामों और क्रिया-कलापों को जिनको यदि आप स्वयं करते तो हानिकारक अथवा पाप रूप समझे जाते, आप घोरतम पाप समझिये; संसार के ऐसे कामों से आप घृणा कीजिये और विरत रहिये परन्तु ऐसे कामों अथवा क्रियाओं के करने वालों से घृणा न कीजिये और न उन्हें तुच्छ ही समझिये। उनको गलत समझने का आपको कोई अधिकार नहीं।

(१२९)

बिना कांटे गुलाब नहीं होता, वैसे ही इस संसार में विशुद्ध भलाई भी अलभ्य है। जो पूर्ण रूप से शुभ है, वह तो केवल परमात्मा है।

(१३०)

शौपनहावर, जर्मन दार्शनिक का कहना है कि आनन्द को अपने भीतर पाना कठिन है। परन्तु उस को अन्यत्र पाना तो असम्भव ही है।

(१३१)

सोना और लोहा खरीदने के लिये ही ठीक हैं, बस, इससे अधिक उनका उपयोग नहीं। आनन्द इन भौतिक पदार्थों की श्रेणी में नहीं है, अतः यह सोने और चाँदी से कदापि, किसी प्रकार मोल नहीं लिया

जा सकता।

(१३२)

जो ऐसा मानते हैं कि उनका आनन्द कुछ विशेष परिस्थितियों पर अवलम्बित है, वे देखेंगे कि सुख का दिन सदा उनसे दूर ही दूर हटता जाता है। अगिया बैताल के समान निरन्तर उनसे भागता रहता है।

(१३३)

जैसे को तैसा आकर मिलता है; आप यहीं, इसी क्षण, ईश्वर के आनन्द को अपने भीतर अनुभव करो, सफलता का आनन्द अपने आप आप की ओर खिंचता हुआ चला आयेगा।

(१३४)

महान् सुखी और धन्य है वह, जिसका जीवन निरन्तर बलिदान है।

(१३५)

सुखी है वह जो निरहंकार जीवन की श्वास को स्त्री और पुरुष की भीड़ में वैसा ही प्रेरक देखता है जैसा वह गुलाब की वाटिकाओं और शाहबलूत के बागोंमें सांस लेता है। वही संसार को स्वर्गीय उपवन में बदल देता है।

(१३६)

यदि आप अपनी जीवन-शक्ति को कायम रखना चाहते हैं, यदि आप अपने स्वास्थ्य को स्थिर रखना चाहते हैं, यदि आप की इच्छा है कि आपका नाड़ी-संस्थानरूपी घोड़ा जीवन के बोझ को सुगमतापूर्वक ढो सके, तो आप को अपने अहंकारपूर्ण विचारों के बोझ को हलका करना चाहिये।

(१३७)

अपने प्रति सच्चे बनिये और संसार की अन्य किसी बात की ओर ध्यान न दीजिये।

(१३८)

संसारमें व्यथा का प्रधान कारण यह है कि हम लोग अपने भीतर नहीं देखेते, स्वयं अपना मन स्थिर नहीं करते, अनेक बातों में आवश्यकता से अधिक विश्वास कर लेते हैं और चाहते हैं कि बाहरी शक्तियाँ हमारे सोचने-विचारने के काम को पूरा कर दें।

(१३९)

मित्रों द्वारा और शत्रुओं द्वारा किया हुआ दु:खदायी छिद्रान्वेषण आपको अपनी सच्ची आत्मा के प्रति सतेज कर सकता है; जैसे कि रात के भयानक स्वप्न आपको यकायक जगा देते हैं।

(१४०)

अरे ! स्वर्ग (दिव्यानन्द) आपके भीतर है; इन्द्रियों के विषयभोगों में उस आनन्द को मत ढूँढ़ो; अनुभव करो कि आनन्द आप ही के भीतर है।

(१४१)

सम्पूर्ण स्वर्ग आप के भीतर है; सम्पूर्ण सुख का स्रोत आप के भीतर है, ऐसी स्थिति में अन्यत्र आनन्द को ढूँढ़ना कितना अनुचित और असंगत है।

(१४२)

मनुष्य स्वयं आप ही अपने भाग्य का विधाता है।

(१४३)

जब समस्त संसार आप ही की रचना है, आप ही का संकल्प है, तो आप अपने को तुच्छ और दीन-हीन पापी क्यों समझते हैं ? आप अपने को निर्भय, स्वावलम्बी, परमात्मा का अवतार क्यों नहीं मानते ?

(१४४)

राम कहता है कि सर्व रूप 'सब' के साथ, एक स्वर होने से सफलता लाभ होती है। सफलता सदा आपके भीतर की भलाई का परिणाम है, सफलता ईश्वर में तन्मय और तल्लीन होने से मिलती है। सदा

ऐसा ही हुआ करता है।

(१४५)

मुक्त पुरुष वह है जिस का भीतरी प्रकाश उसके चारों ओर सौंदर्यका दीप्त मण्डल बिखेर देता है, और जिससे सदा ईश्वरीय प्रेम की छटा छिटकती रहती है।

(१४६)

जो मुक्त है सारी प्रकृति उसकी वन्दना करती है, सारा विश्व उसके सामने सिर झुकाता है। मैं मुक्त हूँ, आप मुक्त हैं। चाहे आज यह माना जाये या नहीं, पर वह एक निष्ठुर सत्य है, देर या सवेर इसे सब लोगों को अनुभव करना पड़ेगा।

(१४७)

अपने सिवा और किसी के प्रति आप उत्तरदायी नहीं। आप अपने प्रति घोर अपराध करेंगे, यदि आप सुख और शान्ति का यह सब से पवित्र नियम भंग करेंगे।

(१४८)

ओ३म्, अ उ म्, मन्त्र का पहला अक्षर अ उस अक्षय तत्त्व, परमात्मतत्त्व का प्रतिपादन करता है जो जाग्रत अवस्था के मायिक और भौतिक जगत् को प्रकाशित करता हुआ अधिष्ठान रूप से स्थित है। उ

अक्षर मानसिक जगत् का प्रतिपादन करता है और अन्तिम अक्षर म् उस परब्रह्म का प्रतिपादन करता है, जो अन्धकारमय अवस्था में भी अपने को अज्ञात रूप से प्रकाशित करता रहता है।

(१४९)

पवित्र ओंकार मन्त्र में बड़ा प्रभाव है। यदि विज्ञान इस सच्चाई का विरोध करे तो उसे सौ बार धिक्कार है!

(१५०)

सुखी है वह जो ओंकार में रहता-सहता चलता-फिरता और अपना अस्तित्व रखता है। अपने भीतर के इस महान् कोष को अनुभव करने के लिये, स्वर्ग के साम्राज्य का फाटक खोलने के लिये इस महामन्त्र की ताली का प्रयोग आवश्यक है।

(१५१)

प्रेम का अर्थ है व्यवहार में अपने पड़ौसियों के साथ, उन लोगों के साथ जिनसे आप मिलते-जुलते हैं एकता और अभेदता का अनुभव करना।

(१५२)

प्रेम कला भी है और विज्ञान भी। वैज्ञानिक आविष्कार तो केवल महान् सूर्य रूप, प्रेमाग्नि या

एकता के भाव की चिनगारियाँ, स्फुल्लिग मात्र हैं।

(१५३)

विधानों का विधान एकमात्र प्रेम है। प्रेम में निवास करना ही अपने प्रति सच्चा रहना है।

(१५४)

सच्चा प्रेम सूर्य के समान आत्मा को विकसित कर देता है। मोह मन को पाले के समान ठिठुराकर संकुचित कर डालता है।

(१५५)

प्रेम को मोह मत समझो। प्रेम और है, मोह और है। इन्हें एक समझना भारी भूल है।

(१५६)

भक्ति या प्रेम रोने-धोने और मांगने-जाँचने की अभावात्मक दशा नहीं है। वह एक ऐसी अनिर्वचनीय समता दिलाने वाली अवस्था है, जहाँ माधुर्य, मौज और लापरवाही अपने आप फूट निकलती है। यह अवस्था सब में सर्वात्मा प्रभु को देखने की है। यह अवस्था जहाँ कहीं दृष्टि पड़े उसीमें अपने आत्मदेव को देखने की है। यह अवस्था यह अनुभव करना है कि सर्वात्मा 'सब' स्वयं सौंदर्य है और वही मैं हूँ, वही तू है 'तत्त्वमसि'।

(१५७)

विषय-वासना-हीन प्रेम ही आध्यात्मिक प्रकाश है।

(१५८)

प्रेम अथवा अभेदता की भावना जब दो प्राणियों में संचरित होने लगती है तब द्वैत का भ्रम मिट जाता है।

(१५९)

जीवन के संघर्ष में किस की विजय होती है ? प्रेम की !

(१६०)

प्रेम का अर्थ है सौंदर्य का दर्शन करना।

(१६१)

प्रेम ही एकमात्र दैवी विधान है और सब विधान केवल सुव्यवस्थित लूटमार हैं। केवल प्रेम को ही नियय भंग करने का अधिकार है।

(१६२)

'प्रेम' इस हद तक गलत समझा गया है कि प्रेम शब्द के उच्चारण मात्र ही से प्यारे लोगों के हृदय में दिव्य ईश्वरीय ज्योति की जगह कामुकता और मूर्खता के भावों का उद्रेक होने लगता है।

(१६३)

प्रेम अन्तःप्रेरक होता है, मस्तिष्क उसकी व्याख्या करता है। जिस प्रकार वस्त्रों से पहले शरीर है, उसी प्रकार सोचने-विचारने से पहले सदैव भावना का उदय होता है।

(१६४)

इच्छा मात्र प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है और वही ईश्वर तुम हो।

(१६५)

प्रेम में न छुटाई है, न बड़ाई; न ऊँचाई है, न निचाई।

(१६६)

जिस समय आप प्रेम में केन्द्रीभूत हो जाते हैं, तभी सारे चमत्कार सम्भव होने लगते हैं।

(१६७)

जिस मनुष्य ने कभी प्रेम नहीं किया, वह कदापि ईश्वरानुभव नहीं कर सकता। यह एक तथ्य है।

(१६८)

भय केवल घनीभूत प्रेम है, अन्यथा प्रेम भय पर कैसे विजयी हो सकता था?

(१६९)

दिखावटी प्रेम, झूठी भावनायें और कृत्रिम

भावुकता—ये सब ईश्वर के प्रति अपमान हैं।

(१७०)

जब आप विरह-वियोग और भेद-भावके दलदल में फँस जाते हैं, तभी आप आराम से वंचित होकर विराम (बीमार) हो जाते हैं। जिस समय आप अपने को सम्पूर्ण और सर्वरूप अनुभव करते हैं, उसी समय आप पूर्ण और सम्पूर्ण हो जाते हैं।

(१७१)

आधि-व्याधि क्या है ? प्रेमके अभाव में संकोचन अथवा संकीर्ण वृत्ति; केवल परछाई के हिलने-डुलने से पर फड़फड़ाना, और दिन के झूठे स्वप्नों के भय से चिल्लाना।

(१७२)

जब कोई बात बिगड़ती दिखायी देती है, तब उस समय अपने आपको प्रेम के विधान से ठीक करने के स्थान पर अड़ोस-पड़ोस से झगड़ना ऐसा ही है जैसा कि टेलीफोन के अदृष्ट सिरे पर बोलने वाले किसी मित्र से अशुभ समाचार मिलने पर टेलीफोन रिसीवर को तोड़ने लगना।

(१७३)

यह सत्य है कि बकवादियों, बाहरी नामरूपों में

विश्वास करने वालों और लज्जाजनक प्रतिष्ठा' के निर्लज्ज दासों के संगत के समान और कोई विषैला पदार्थ नहीं है। परन्तु यह भी सत्य है कि जहाँ पर प्रेम का डेरा जम जाता है, वहाँ पर कोई भी गुस्ताख आवारा पर नहीं मार सकता।

(१७४)

ओ मनुष्य ! तुम अपनी ही चितवन से सारी वस्तुओंको चित्ताकर्षक बना देते हो। उन (प्रेमभरी) आँखों से जब तुम उनकी ओर देखते हो, तो तुम्हीं स्वयं अपनी चमक उन पर डाल देते हो और फिर तुम्हीं उनके प्रेम में फँस जाते हो।

(१७५)

समय को तो प्रेम की स्वाभाविक प्रवृत्तिके साथ-साथ चलना पड़ता है।

(१७६)

पहले दिल जीतो, फिर विवेक से अनुरोध करो। जहाँ से बुद्धि निराश लौट जाती है, वहाँ फिर भी प्रेम की आशा हो सकती है। ऐसी कहानी है कि यात्री के शरीर पर से आँधी कोट न उतरवा सकी थी, परन्तु गर्मी ने उसे उतरवा दिया था।

(१७७)

वह कितना धन्य है और भाग्यवान् है जिसका

माल चोरी गया हो, वह कितना और अधिक भाग्यवान् है जिसकी स्त्री भाग गई हो; किन्तु एक शर्त है—यदि इन कारणों से प्रेमधन के साथ उसका सीधा संयोग हो जाय।

(१७८)

"भेंट हैं तुझको मेरे प्राण—
हे प्रभु, ले लो इनको आन"

इस कविता में "प्रभु" शब्द से तात्पर्य कोई आकाश में बैठा हुआ बादलों में सर्दी खाने वाला अदृश्य हव्वा नहीं है; प्रभुका अर्थ है सर्वरूप परमात्मा–तुम्हारा सहवर्ती जन-समुदाय।

प्रेम—मैं ही इस समस्त परिवर्तनशील संसार का आदि और अन्त हूँ। ऐ मनुष्य ! मुझसे परे अन्य कुछ भी नहीं—जैसे माला के दाने धागे में पिरोये होते हैं, उसी प्रकार केवल एक (प्रेम स्वरूप) में यह सारा जगत् पिरोया हुआ है।

(१७९)

कामना से रहित कर्म ही सर्वोत्तम त्याग अथवा पूजन है।

(१८०)

जिस प्रकार मधु में फंस जाने पर मक्खी अपनी

टांगें धीरे-धीरे परन्तु दृढ़तापूर्वक मधु से मुक्त कर लेती है, उसी प्रकार व्यक्तियों, नाम-रूपों की आसक्ति का एक-एक कण हमें अपने से दूर करना होगा।

(१८१)

एक-एक करके हमें अपने सम्बन्धों को काटना होगा, बन्धनों को यहाँ तक तोड़ना पड़ेगा कि जब अन्तिम अनुग्रह के रूप में मृत्यु सामने आवे तब हम सभी अनिच्छित पदार्थों को त्यागकर विजयी हो जायँ।

(१८२)

दैवी विधान का यह चक्र निर्दयतापूर्वक घूमता रहता है। जो इस विधान के अनुकूल चलता है, वह इस पर सवारी करता है; परन्तु जो अपनी इच्छा को ईश्वर-इच्छा, दैवी विधान के विरोध में अड़ाता है, वह अवश्य ही कुचला जाता है और उसे (यूनानी साहित्यमें वर्णित स्वर्गसे आग चुराने वाले) प्रोमिथियम के समान पीड़ा भोगनी पड़ती है।

(१८३)

त्याग को ही हिन्दू ज्ञान कहते हैं, त्याग और ज्ञान एक ही वस्तु हैं, दो नहीं।

(१८४)

जो ज्ञान त्याग का पर्यायवाची है वह सत्य का

ज्ञान है, वास्तविक आत्मा का ज्ञान है, तुम्हारे वास्तविक स्वरूप का ज्ञान है। यही ज्ञान त्याग है, इस ज्ञान को प्राप्त करो और आप त्यागी हो जाओ।

(१८५)

त्याग आपके स्थान, पद और शारीरिक काम-काज से कोई सम्बन्ध नहीं रखता; त्याग का इन बातों से कोई सरोकार नहीं।

(१८६)

त्याग तो आपको सर्वोत्तम स्थिति में रखता है; आपको उत्कर्ष की स्थिति में पहुँचा देता है।

(१८७)

त्याग निश्चय ही आपके बल को बढ़ा देता है; आप की शक्तियों को कई गुना कर देता है; आपके पराक्रम को दृढ़ कर देता है; नहीं, आपको ईश्वर बना देता है। वह आप की चिन्तायें और भय हर लेता है। आप निर्भय तथा आनन्दमय हो जाते हैं।

(१८८)

काम केवल तभी होता है, जब हम इस परिच्छिन्न स्वार्थी अहंकार से पल्ला छुड़ा लेते हैं। ज्योंही आप इस स्वार्थी अहंकार को प्रतिपादित करते हैं; त्योंही काम बिगड़ जाता है। सर्वोत्तम काम वह है जो

अकर्तृत्व, एवम् अव्यक्तित्वभाव से किया जाता है। त्याग का अर्थ है इस क्षुद्र, व्यक्तिगत, स्वार्थी अहंकार को दूर करना अथवा आत्मा की इस झूठी भावना से पल्ला छुड़ाना।

(१८९)

त्याग का अर्थ तपश्चर्या नहीं है।

(१९०)

त्याग का अर्थ है प्रत्येक पदार्थ को पवित्र बना देना।

(१९१)

बच्चेको त्याग देने का अर्थ बच्चेसे सारे सम्बन्धों का तोड़ लेना नहीं है, वरन् पुत्र तथा पौत्र को ईश्वररूप समझ लेना है।

(१९२)

एक-एक में और सब में ईश्वरत्व का भान करना ही वेदान्त के अनुसार त्याग है।

(१९३)

स्वार्थपूर्ण और व्यक्तिगत सम्बन्धों को त्याग दो, प्रत्येक में और सब में ईश्वरत्व को देखो; प्रत्येक में और सब में ईश्वर के दर्शन करो।

(१९४)

व्यावहारिक त्याग का अर्थ है कि हम हर समय

सृष्टिका खोखलापन तथा अपनी ही वास्तविक आत्मा की व्यापकता अपनी दृष्टि के सामने रखें। और इस प्रकार चिन्ता, भय, व्यग्रता और आतुरता तथा मन की व्याधियों को त्याग कर दूर फेंक दें।

(१९५)

आप कोई कर्तव्य करने के लिये बाध्य नहीं; आप किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं, आप को कोई ऋण नहीं चुकाना है, आप किसी से बँधे नहीं हैं। आप अपने व्यक्तित्त्व को सभी समाजों, सभी राष्ट्रों और प्रत्येक वस्तु के सामने प्रतिपादन करो। यही वेदान्तिक त्याग है।

(१९६)

आप ही प्रत्येक् वस्तु हैं, भूत और प्रेत, देव तथा देव-दूत, पापी तथा पुण्यात्मा, सब आप ही तो हैं। इस बात को जान लीजिये, इसे भान कीजिये, इसे अनुभव कीजिये, और आप 'मुक्त' हैं। यही त्याग का मार्ग है।

(१९७)

त्याग क्या है ? अहंकार-युक्त जीवन को त्याग देना। निस्संशय और निस्सन्देह अमर जीवन तो व्यक्तिगत और परिच्छिन्न जीवन को खो डालने से

मिलता है ।

(१९८)

केवल त्याग ही अमरत्व प्राप्त करता है ।

(१९९)

वेदान्तिक त्याग कैसे हो ? आपको सदा त्याग की चट्टान पर ही खड़ा होना पड़ेगा, अपने आपको इस उत्कर्ष दशा में दृढ़तापूर्वक जमा कर, जो काम सामने आये, उसके प्रति अपने आप को पूर्णतः अर्पण करना होगा । तब आप थकेंगे नहीं, फिर कोई भी कर्तव्य हो, आप उसे पूरा कर सकेंगे ।

(२००)

त्याग का आरम्भ सब से निकट और सब से प्रिय वस्तुओं से करना चाहिये । जिसका त्याग करना परमावश्यक है, वह है मिथ्या अहंकार अर्थात् 'मैं यह कर रहा हूँ' , 'मैं कर्ता हूँ, 'मैं भोक्ता हूँ'—यही भाव हममें मिथ्या व्यक्तित्व को उत्पन्न करते हैं—इनको त्याग देना होगा ।

(२०१)

जंगलोंमें चले जाना उद्देश्य-प्राप्ति का केवल एक साधनमात्र है, जैसे हम विश्वविद्यालय में पढ़ने जाते हैं ।

(२०२)

वेदान्त योग का साक्षात् करने के लिये जंगलों में जाने तथा असाधारण अभ्यास करने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस समय आप कर्म विशेष में खो जाते हैं अथवा किसी प्रवृत्ति विशेष में तल्लीन हो जाते हैं, उस समय आप स्वयं शिवके बाबा हो जाते हैं।

(२०३)

त्याग आपको हिमालय के घने जंगल में जाने का आदेश नहीं देता; त्याग आपसे कपड़े उतार डालने का आग्रह नहीं करता, त्याग आपको नंगे पांव और नंगे सिर घूमने के लिये नहीं कहता।

(२०४)

त्याग न तो अकर्मण्य लाचारी और नैराश्यपूर्ण निर्बलता है और न दर्पपूर्ण तपश्चर्या ही। ईश्वर के पवित्र मन्दिर अर्थात् अपने शरीर को बिना प्रतिरोध मांसाहारी निर्दयी भेड़ियों को खाने देना कोई त्याग नहीं है!

(२०५)

अपने-आपको सत्य से पृथक् और भिन्न समझते रहना और फिर धर्म के नाम पर त्याग आरम्भ करना—इसका अर्थ यह होता है कि जो चीज अपनी

नहीं है आप उस पर अधिकार जमाना चाहते हैं। यह तो गबन है !

(२०६)

प्रेम-प्रेरित पूर्ण 'त्याग' से रहित सभ्य मनुष्य केवल तजुर्बेकार और समझदार वनमानुष है।

(२०७)

त्याग के अतिरिक्त और कहीं वास्तविक आनन्द नहीं मिल सकता; त्याग के बिना न ईश्वर-प्रेरणा हो सकती है, न प्रार्थना।

(२०८)

ईश्वरत्व और त्याग पर्यायवाची शब्द हैं। संस्कृति और सदाचार उसकी बाह्य अभिव्यक्तियाँ हैं।

(२०९)

अहंकारपूर्ण जीवन का छोड़ देना ही त्याग है, और वही सौंदर्य है।

(२१०)

ओ धार्मिक वाद-विवाद और दार्शनिक तर्क-वितर्क ! भाग जाओ। मैं जानता हूँ कि सुन्दरता ही प्रेम है, और प्रेम ही सुन्दरता है। और दोनों ही त्याग है।

(२११)

हृदय की शुद्धता का अर्थ है अपने आप को

साँसारिक पदार्थों की आसक्तिसे पृथक् रखना। त्याग का अर्थ इससे रंचकमात्र कम नहीं।

(२१२)

ध्यान कामनाओं से ऊपर उठने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

(२१३)

कामनायें एकाग्रता में बाधा डालती हैं और जब तक चित्त-शुद्धि और आत्म-ज्ञान नहीं होता, तब तक वास्तविक एकाग्रता प्राप्त नहीं हो सकती।

(२१४)

वेदान्तके अनुसार मानसिक एकाग्रता की विशेषता यह है कि हमें अपनी असली आत्मा को सूर्यों का सूर्य और प्रकाशों का प्रकाश अनुभव करना, साक्षात् करना होता है।

(२१५)

जरा ॐ का गान करो, जरा ॐ का उच्चारण करो, और उच्चारण करते समय अपनी सम्पूर्ण हृदय उसमें लगा दो, अपनी सारी शक्तियाँ उसमें जुटा दो; अपना सारा चित्त उसमें लगा दो; ऐसा साक्षात् करने में ही अपना सारा बल लगाओ।

(२१६)

ॐ अक्षरका अर्थ है 'मैं वह हूँ' 'मैं और वह एक

हैं', ॐ 'मैं वही हूँ' ॐ ! ॐ !!

(२१७)

ॐ का उच्चारण करते समय यदि हो सके तो अपनी समस्त त्रुटियों और सारे प्रलोभनों को अपने मन के सामने चित्रित करो। फिर उन्हें अपने पाँवों तले कुचल डालो और मसल डालो उनसे ऊपर उठो; और विजयी होकर उनसे बाहर निकलो।

(२१८)

यह शरीर मेरा है—इस अधिकारभाव को छोड़ दो, सारे स्वार्थपूर्ण सम्बन्धों को 'मेरे' और 'तेरे' के भावों को छोड़ दो। इनसे ऊपर उठो।

(२१९)

सत्य के लिये तड़पना, आत्माके परम वास्तविक आनन्द के लिये लालायित होना, अपने को ऐसी मानसिक स्थिति में रखना ही मुरली को मुरलीधर के ओंठों पर लगाना है।

(२२०)

ऐसी मानसिक अवस्था में, हृदय की ऐसी शांति में, ऐसे शुद्ध अन्तःकरण से ॐ के मन्त्र का उच्चारण आरम्भ करो। पवित्र अक्षर ॐ का गान आरम्भ करो।

(२२१)

मुरली से मधुर राग निकालना यही है कि अपने सारे जीवन को मुरली बना लो; इसको स्वार्थपरता से खाली करके इसमें ईश्वरीय श्वास भर दो।

(२२२)

ॐ का गान करो, और गान करते समय अपने मन के सरोवर में खोज आरम्भ करो। और उस बहु-जिह्वा वाले विषधर नाग को ढूँढ़ निकालो। तुम्हारी अगणित इच्छायें, साँसारिक अभिलाषायें और स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियाँ ही उस विषधर नागके फण, जिह्वा और दांत हैं। उनको एक-एक करके कुचल डालो, उनको अपने पांवों तले रौंद डालो। उनको चुन-चुन करके निकाल डालो, उनको अपने वश में करो। ॐ अक्षर का उच्चारण करते हुए उनको नष्ट कर डालो।

(२२३)

शरीर और उसकी परिस्थितियों से मन और उसके मन्तव्यों से, सफलता या भय के भाव से अपने आपको ऊपर समझो।

(२२४)

अपने आपको सर्वव्यापक परम शक्ति, सूर्यों का

सूर्य, कार्य-कारण से ऊपर, नाम-रूप जगत् से परे और समस्त संसार से अभिन्न, परमानन्द परम स्वतंत्र 'राम' समझो।

(२२५)

ॐ का उच्चारण करो, गायन करो किसी भी ध्वनि से, जो भी स्वतः स्वभावतः आपके चित्त में उठे।

(२२६)

क्षण भर के वास्ते सारी इच्छाओं को परे फैंक दो। ॐ जपो—न कोई राग, न कोई द्वेष, पूर्ण शान्ति ! बस, आप का सारा अस्तित्व प्रकाशस्वरूप हो जायेगा। कर्मके साँसारिक प्रयोजनोंको तिलांजलि दे दो। कामनाओं के भूत-प्रेतों को उतार दो या झाड़ दो, अपने सारे काम को पवित्र बनाओ। मोह और आसक्ति के रोग से अपने को छुड़ा लो; केवल एक पदार्थ की आसक्ति ही तुम्हें सर्वमय परमात्मा से अलग कर सकती है।

(२२७)

हृदय को शुद्ध करो, ॐ अक्षर का गायन करो; निर्बलता सूचक सारे चिह्नों का चुन-चुन कर अपने भीतर से बाहर निकालो और सुन्दर चरित्रवान् बन कर विजयी निकलो।

(२२८)

जब मनोविकार रूपी दानव नष्ट हो जायेगा, तब आप देखेंगे कि आपके इच्छित पदार्थ आप की उसी प्रकार पूजा करते हैं, जिस प्रकार कि यमुना नदी के भीतर कालिय नाग के मारे जाने पर उसकी स्त्रियों ने श्रीकृष्णजी की पूजा की थी।

(२२९)

शरीर से ऊपर उठो। समझो और अनुभव करो कि आप अनन्त हैं, परम आत्मा हैं; फिर आप मनोविकार या लोभ से कैसे प्रभावित हो सकते हैं?

(२३०)

समाज, रिवाज, लोकाचार, कानून, नियम, दस्तूर, छिद्रान्वेषण और समालोचनायें आपके सच्चे अपने आप या आत्मा को छू नहीं सकतीं। ऐसा अनुभव करो, और समाज इत्यादि के भ्रम को दूर कर दो, उसे त्याग दो, जो आप का असली स्वरूप नहीं है। ॐ का ऐसा ही अर्थ करो और थकान के प्रत्येक अवसर पर ॐ का उच्चारण करते रहो।

(२३१)

अनुभव करो कि आप स्वयं पूर्ण आनन्द हैं, आनन्द! पूर्ण आनन्द!

(२३२)

रात-दिन नित्य इस सत्य का चिन्तन करो कि संसार के मत-पथ और समाज केवल आपके अपने ही संकल्प हैं। आप ही वह असली शक्ति हैं, सम्पूर्ण संसार जिसका श्वाँस अथवा छायामात्र है।

(२३३)

भोजन का जो कौर आपके मुँह में जाये, उसके साथ आपको यह चिन्तन करना चाहिये कि यह कौर समस्त भूमण्डल का प्रतिनिधि-रूप है। मैं यहाँ इसके द्वारा सारे ब्रह्माण्ड को अपने भीतर लीन कर रहा हूँ।

(२३४)

प्रत्येक रात्रि को या मध्याह्न के समय सोने से पहले जब आँख बन्द होने लगे तब अपने मन में ऐसा दृढ़ निश्चय कीजिये कि जागने पर आप अपने को वेदान्तिक सत्य की साक्षात् मूर्ति पायेंगे।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

वेदान्त केसरी

स्वामी रामतीर्थ महाराज जी की झोली से

(१)

आप कोई कर्तव्य करने के लिये बाध्
आप किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं, आ
ऋण नहीं चुकाता है, आप किसी से
आप अपने व्यक्तित्व को सभी
राष्ट्रों और प्रत्येक वस्तु के सा
यही वेदान्तिक त्याग है।

अहंकारपूर्
और वही सौ

ाग

**

स्वामी रामतीर्थ उपदेश

(१)

एक-एक में और सब में ईश्वरत्व का भान करना ही वेदान्त के अनुसार त्याग है।

(२)

स्वार्थपूर्ण और व्यक्तिगत सम्बन्धों को त्याग दो, प्रत्येक में और सब में ईश्वरत्व को देखो, प्रत्येक में और सब में ईश्वर के दर्शन करो।

(३)

व्यावहारिक त्याग का अर्थ है कि हम हर समय सृष्टि का खोखलापन तथा अपनी ही वास्तविक आत्मा की व्यापकता अपनी दृष्टि के सामने रखें। और इस प्रकार चिन्ता, भय, व्यग्रता, आतुरता तथा मन की व्याधियों को त्याग कर दूर फेंक दें।

(४)

बच्चे को त्याग देने का अर्थ बच्चे से सारे सम्बन्धों को तोड़ लेना नहीं है, वरन् पुत्र तथा पौत्र को ईश्वररूप समझ लेना है। **